



हिन्दी को सन्त कवयित्रियों की वाणियों का  
समोक्षात्मक अध्ययन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० (हिन्दी)

उपाधि के लिए

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध  
का सार

निर्देशक :

डा० प्रेमचन्द्र गुप्त

एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत)

पी-एच०डी०, डी० लिट०

साहित्याचार्य

प्रोफेसर

प्रस्तुतकर्ता :

रुबीना नज़ीर

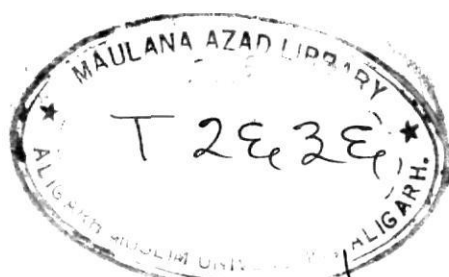
एम०ए०

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

१९८४



8 JAN 1965

THESIS SECTION

Stack 2nd  
(5)

हिन्दी की सन्त कवियत्रियों की वाणियों का समीक्षात्मक अध्ययन

"प्रबन्ध - सार "

=====

प्रस्तावना

=====

मानव में मानवीय तत्त्व उभारने का श्रेय संस्कृति को है । प्रत्येक देश व राष्ट्र की एक अपनी संस्कृति होती है वस्तुतः इसे ही किसी राष्ट्र का प्राण तत्त्व या आत्मा कह सकते हैं । संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, अतः किसी विशेष वर्ग की साहित्यिक देन पर विवेचनापूर्ण दृष्टिपात करने के पूर्व उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से परिचय आवश्यक है ।

भारतीय संस्कृति के इतिहास के प्रारम्भिक पृष्ठों पर नारी की प्रतिभा वेदमंत्रों तथा ऋचाओं के रूप में स्वर्णाक्षरों में अंकित है । संस्कृति के प्रतीक साहित्य में नारी के महत्त्व तथा प्रतिभा की स्पष्ट छाया मिलती है । वेद, महाकाव्य, रामायण तथा महाभारत, बौद्ध तथा जैन साहित्य तथा उनके समवर्ती एवं परवर्ती मनु, किष्क, याज्ञवल्क्य, भरत मुनि, नारद, बृहस्पति, पाराशर इत्यादि के धर्मशास्त्रों के आधार पर भारतीय सामाजिक व्यवस्था की रेखाएँ खींची जाती हैं ।

भारतीय संस्कृति को प्रभावित करने वाली "सन्त" परम्परा सुदीर्घ काल से अक्षुण्ण बनी हुई है । वैदिक युग से आई इस परम्परा को जहाँ सन्त कबीर, नानक, दादू जैसी विभूतियों

ने लजा - सँवार कर आगे बढाया है; वही दूसरी ओर इन्हीं की परम्परा का पालन करने वाली सन्त कवियत्रियों के महत्त्व एवं साहित्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। सन्त कवियत्रियों के परिचय पाने से प्रथम 'सन्त' शब्द के युगातीत महत्त्व को जानना आवश्यक है।

### **सन्त शब्द** =====

सन्त शब्द सामान्यतया साधु महात्मा का पर्याय माना जाता है। कुछ लोग इसे अंग्रेजी के 'सेण्ट' शब्द से भी जोड़ते हैं। भारतीय संस्कृत शब्द कोशों में इसके अनेक अर्थ लगाए गए तथा इसे 'फलदाताओं' में 'भेठ', 'लोकानुग्रहकारी' तथा ब्रह्मानन्द सम्पन्न आदि अर्थों से जोड़ा गया<sup>1</sup> तथा आधुनिक युग में भी सन्त का तात्पर्य उपकारी व्यक्ति से माना जाता है। ये सभी अर्थ निःसंदेह सन्त शब्द की व्यापकता, गम्भीरता एवं लोक-प्रियता को प्रकट करते हैं।

प्राचीन साहित्य में भी सन्त शब्द का अर्थ परोपकारी, सज्जन, विवेकी आदि से जोड़ा गया है। जो सन्त के सद्गुण, सदाचारपूर्ण जीवन की कला प्रस्तुत करते हैं। ऋग्वेद और उपनिषदों में सन्त को ब्रह्मोपासक से भी जोड़ा गया है।<sup>2</sup> सन्त शब्द का सम्बन्ध तत् से अच्छा के लिए माना गया। यह ब्रह्मविद् का तत्

1- वेद दर्शनाचार्य, श्री स्वामी गौडवरानंद जी : वेद में 'सन्त' कल्याण- संत ऊँ, पृ० 49

2- अस्ति ब्रह्मेक्येदेद, सन्तमेव विदुर्ध्या - तैत्तिरीय उपनिषद्



पवित्र और महान गुणों का आश्रय बना । इसी कारण सत् से अच्छा और असत् से बुरा भाव जुड़ गया ।

### सन्त शब्द के अन्य अर्थ

इस "सन्त" शब्द के अन्यान्य अर्थ किए गए हैं । निष्कण्ठ में इसे "जल" का पर्याय तथा सर्वदा विद्यमान रहने वाला माना है । वेदों में ब्रह्म अर्थ हेतु भी प्रयुक्त हुआ है । इसी ग्रंथ में इसे सज्जन, उत्तम आदि के अर्थों में उ भी व्यक्त किया गया है । यजुर्वेद में इसका अर्थ "विद्यमान" और "सत्ता" से तथा अथर्ववेद के केन सूक्त में "सत्ता वाचक" रूप में प्रयुक्त हुआ है । छन्दोग्योपनिषद् में यह "ब्रह्म" अर्थ में आया है ।

महाभारत काल में सत् शब्द निष्पन्न संत शब्द कतिपय गुण सम्बन्धित व्यक्तियों तक ही सीमित रह गया,<sup>1</sup> जो धर्म, दया, एवं परोपकारी व्यक्ति के लिए ही माना जाता था ।<sup>2</sup> श्रीमद्भगवत् गीता में इसका प्रयोग - ब्रह्म, परार्थ कार्यरत, यज्ञ, दान, तप में स्थित, सज्जन आदि अर्थों में भी हुआ है । सन्त को कालिदास ने बुद्धिमान तथा भृशहरि ने परोपकारी बोलकर माना है ।<sup>3</sup>

1- [क] आचार लक्षणो धर्मः सन्तश्चाचार लक्षणः ।

[ख] यजेत्सवि दाने च स्थितिः सचिति बोध्यते ॥ महाभारत-गीता ॥  
-4 17/25

2- [महाभारत-3] कर्म धेव तदर्थाय सादित्यभिधीयते । - गीता 17/27

3- [संत] स्वयं परहिते विदिताभियोगाः । - भृशहरि ।

इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर संस्कृत साहित्य की औसत रचनाओं में संत शब्द ब्रह्म, केठ, विद्यमान, सज्जन, परोपकारी आदि विविध अर्थों का बोध कराता है। अगे चलकर प्रसिद्धः मध्य-कावीर हिन्दी छंद साहित्य में संत शब्द "सज्जन" व्यक्त है लिए रुढ़ि सा हो गया।

### हिन्दी साहित्य में संत =====

हिन्दी में "सत्" शब्द को संस्कृत से सत्तन रूप में ही ग्रहण कर लिया। चित्का प्रयोग "सन्त" शब्द के रूप में भक्त, सज्जन और बड़ा के अर्थ में सभी वर्गों में मिलता है।

हिन्दी साहित्य में इस संत अर्थात् "सत्" आधारण वाले सज्जन के लक्षणों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कबीर ने साध को सं, साध - साधी भूत को सं, साध महिमा को सं आदि शीर्षकों में किया गया है। कबीर का संत निम्नलिखित लक्षणों वाला है :-

गिरधरी निह कामता, साईं केती नेणह ।

विधिया तुं म्यारा रहे, सन्तन का संग रह ॥१॥

छोड़ दिया साध्व निर्लिप्त कर्मवाले को तथा गरीबदास छंदर प्रेमी, सरल हृदयी एवं निर्मल व्यक्ति को संत मानते हैं।

पलट साहब इन्हीं लक्षणों पर जोर देते हैं :-

“ की तो हरि वर्ण महे, की तो रहे एकन्त ।”<sup>1</sup>

इस प्रकार मध्यकालीन भक्तों, कवियों और कवयित्रियों ने सन्त को ईश्वर प्रेमी, सांसारिकता से दूर, परोपकारी माना है। वैदिक काल से अब तक के साहित्य में सन्त का अर्थ है - निष्काम साधक। सन्त के उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर विद्वानों ने उसके जीवन को भी विभिन्न कालों में तरह तरह से स्थापित किया है। उसका जीवन कर्मकाण्डों से मुक्त आत्मदर्शन एवं लोकदर्शन की मानवीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर माना गया है।

सन्तों का जीवन इतना पवित्र और निर्मल माना गया है कि उसे ईश्वर के तुल्य ही बताया है :-

संत और राम को एक के जानिए, दूसरा भेद न तनिक जाने

\* \* \* \* \*

पलट कहे संत में राम है, राम में सन्त यह सत्य जाने ।<sup>2</sup>

निर्गुण धारा के कवियों ने संत के द्वारा ईश्वर के तादात्म्य को प्राप्त करने के बाद “रहनी” का एक विशेष आदर्श निश्चित किया है। वह सकल, नम्र, फलमात्रातून्य, उदासीन, दूसरे को आदर देने वाले होते हैं। ईश्वर ऐसे सन्तों को ही प्रेम करता है। सन्त कबीर, गुलाल, भीखा, पलट तथा संत कवयित्रियों

---

1- संत वाणी संग्रह भाग -1, पृ० 218

2- वही, भाग -2, पृ० 8

सहजोबाई तथा दयाबाई ने संतों के इन लक्षणों एवं जीवन रहनी का कानि विस्तार से किया है ।

जिस प्रकार संत कवि संसार के बीच रहकर साधना में रत रहे । ठीक उसी प्रकार महिला संत एवं भक्त कवियत्रियाँ भी अपने गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए लोक सेवा की तथा समाज को नई दिशा प्रदान करती रहीं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि सत्य तत्व की उपलब्धि के पक्षस्वरूप संतों के जीवन में एक विशेष परिवर्तन आ जाता है ।

#### सन्त साहित्य की विशेषताएं

संत सत् तत्व का अनुभव करके उसमें प्रतिष्ठित हो क गए और जीवन को उसी के अनुरूप ढाला फलतः वे विभु रूप होकर सभी को विभु मय बना देने के लिए आवल हो उठे :-

“हरि जी यहै विचारिया, साधी कहौ कबीर ।  
भो सागर में जीवन है, जे कोई पकड़े तीर ॥”<sup>1</sup>

इन संतों का युग संभवतः एण ए से परिपूर्ण था । एक ओर इस्लाम की विस्तारवादी नीति और अविच्छिन्नता, दूसरी ओर वैदिक धर्मान्यायियों की सतर्क सांस्कृतिक चेत्ना । साथ ही बौद्ध एवं जैन धर्मों का बिगड़ता रूप इस युग की मानव चेत्ना रुढ़ियों से मुक्त हो ने का प्रयास कर एक निजी परम्परा के साहित्य सृजन से जुड़ गयी

शास्त्रीय अध्ययन महत्वहीन हुआ काव्य भी निरिचल परम्पराएँ  
कला और भाव पक्ष ढीले पड़ गए ।

इन्हीं सब विकोक्तियों के कारण तत् साहित्य जन-  
जीवन का साहित्य है जो हिन्दू-मुस्लिम, कर्मकाण्ड, ब्राह्मण्डम्बर,  
संक्षिप्त आचार-विचार, तथा रुद्रिग्रस्त दुराग्रहों से ऊपर लोकधर्म का  
संस्थापक एवं प्रतिष्ठापक बन गया ।

#### नारी विषयक अवधारणा

किसी समाज तथा समुदाय का उचित मूल्यांकन करने  
के लिए समाज की स्थिति, एवं साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक  
है । नारी चूंकि मानव का पूर्णत्व है इसलिए उसके विषय में जानने  
के लिए समस्त विज्ञानों को परिप्रेक्ष्य में रखते हुए अध्ययन आवश्यक है ।

नर - नारी एक दूसरे के सम्पूरक होते हुए कई दृष्टियों  
से विभक्ता पूर्ण हैं । शारीर रचना की दृष्टि से नर - नारी  
परस्पर भिन्न हैं । स्त्री - पुरुष के शारीर में अस्थियों की संख्या  
बराबर होते हुए भी रचना में भेद है । पुरुष कठोर साहसी झोधी  
एवं बलिष्ठ होता है, जबकि नारी कोमल, भीरु, दयावान एवं निर्बल  
होती है अर्थात् नारी प्रकृत्या पुरुष से निर्बल एवं कमजोर होती है ।

सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से नारी परिवार की नींव  
है । किसी राष्ट्र एवं समाज की मूल है । यह फिर सत्य है अस्तित्व  
समाज शास्त्री "रायडन" ने ठीक ही कहा है - "स्त्रियों ने ही

प्रथम सभ्यता की नींव डाली है, उन्होंने ही जंगलों में मारे - मारे भटकते गिरते हुए पुरुषों का हाथ पकड़ कर उन्हें "स्थिर" या "धर" में बसाया है ।\* आखेट युग से मानव ने अपने सभ्यता के वरणा पाषाण युग, लोह युग, ताम्र युग से बढ़ाते हुए स्वर्ण युग ॥ सभ्य युग ॥ में बढ़ाए । नारी ने पुरुष के आगे रख कर उसे प्रधानता दी फलतः प्राचीन युग के मातृ प्रधान ॥ मातृ तत्तात्मक ॥ परिवार पितृ प्रधान बन गए और पुरुषों ने उसे सामाजिक क्षेत्रों में जकड़ते हुए दयनीय एवं शोचनीय दशा तक पहुँचा दिया ।

\*वैदिक\* काल व \*रामायण\* काल से नारी की आदर्श स्थिति \*महाभारत\* काल तक निरन्तर घात की ओर अग्रसर हुई और कालान्तर में आपसी राजाओं 'एवं मुगलों' - तुर्कों के युद्धों ने नारी को लोके केवल भौग्या एवं क्लेश का साधन बना दिया । औष्यों के राज्य विस्तार के साथ शिक्षा प्रसार बढ़ा और भारतीय समाज में पुनः घेतना की लहर आई । प्राचीन एवं रुढ़ि ग्रस्त नियम एवं लिखान्त शिक्षित पड़ गए तथा पारधात्य संस्कृति के साथ पुनः भारतीय नारी की स्थिति वैदिक एवं रामायण काल की भाँति आदर्श एवं उन्नत रूप ग्रहण करने लगी है ।

अतीत काल से पुरुषों के नवजीवन एवं सहयोग देने वाली नारी साहित्य का प्रेरणा स्रोत रही है । भारतीय समाज में नारी त्याग एवं समस्या का प्रतीक रही है । स्रु की ओर  
की :-

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।”<sup>1</sup>

वेदिक युग भारतीय समाज का स्वर्ण युग था। वेदों के अध्ययन से पता चलता है कि शिक्षा, विवाह, एवं सम्पत्ति आदि के क्षेत्र में नारी पुरुष के समान अधिकारिणी थी। वह त्याग तपस्या एवं ऋद्धि की पावन विभूति है। उस युग में युवतियों को शिक्षा-दीक्षा के साथ ब्रह्मचर्य की शिक्षा भी दी जाती थी।<sup>2</sup>

पुराणों, उपनिषदों, आरण्यकों, एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित नारी का अवर्द्ध रूप मिलता है। यद्यपि नारी संरक्षण के नियम काफी कठोर हो गए थे। धार्मिक एवं याज्ञिक कार्यों में स्त्री-पुरुष एक साथ भाग लेते थे।

रामायण एवं महाभारत काल में कुछ संयुक्त परिवार थे। वृद्ध पुरुष ही मुखिया होता था। वेदिक काल की ओक्षा इस युग में नारियों के प्रति अनुशासन का भाव अधिक बढ़ गया था तथा कन्या की ओक्षा पुत्र को प्रसूता प्रदान की जाने लगी थी। यद्यपि सती अनुसूया, सीता, उर्मिला, कुलोचना रामायण काल की अवर्द्ध नारी थी। रामायण काल की ओक्षा महाभारत काल में नारी की स्थिति का ह्रास हो चुका था। महाभारत का सारा कथानक नारी के आत-पात ही घूमता है। कहाँ लक्ष्मण और भरत जैसे भाई

---

पृष्ठ 1- मनुस्मृति - अध्याय 3, श्लोक 56

2- ब्रह्मचर्येण, कन्या युवान् विन्दते पतिम्।

- अथर्ववेद 11/5/18

जिन्होंने सीता के गले का हार या कुंजल तक नहीं देखा था और  
कहाँ पाँच पाँठवों की एक पत्नी तथा दुःशासन और दुर्योधन जैसे  
बन्धु द्रोपदी को वस्त्रहीन कर रहे थे और सारी सभा मौन थी ।  
यद्यपि पत्न का सिलसिला प्रारम्भ हो चुका था किन्तु गान्धारी,  
इंती, उभद्रा, शांता, रुक्मिणी, देवकी, यमोधा आदि आदर्श  
नारियों के नाम उस काल छि छि के ही थे ।

वैदिक युग में नारी को जो स्थान प्राप्त था वह  
ब्राह्मण काल में अर्थात् बौद्ध एवं जैन मत के उदय के समय पूर्णतः  
ह्रास हो चुका था । वह कट्टर सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षान्तों  
से आवृत थी । बुद्ध के युग में नारी के जीवन में पुनः उत्थान आया  
किन्तु बौद्ध और जैन धर्मों के शासक एवं शिक्षक होने के साथ ही नारियों  
की स्थिति पत्न की ओर झुकर रही । उसके वात्सलात्मक रूप पर  
ही ज्यादा ध्यान दिया गया ।

अश्वमेध काल में नारी के प्रणयिनी रूप पर विशेष ध्यान  
दिया गया । ऋषियों ने नर-शिखर वर्णन को अधिक महत्व प्रदान  
किया ।

हिन्दी साहित्य के आदि युग का अध्ययन करने पर  
पता चलता है कि नारी सौन्दर्य एवं विलास की मूर्ति मात्र थी ।  
राजाओं के अपनी युव नारी को लेकर ही होते रहे । फलतः विवाह  
वेदी पर तलवार का जाना सहज स्वाभाविक था । इस युग में नारी  
समाज एवं बन्धु विवाह के धर्मों में ऐसी जकड़ दी गई कि वह जीवित



ही पति की विधा में सती होने को विवशा होने लगी ।

मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के साथ हिन्दुओं एवं हिन्दू धर्म की दशा शोचनीय होती गई । रक्त शृङ्खला एवं धर्मरक्षार्थ ब्राह्मणों एवं समाज के वर्णधारों ने अधिकाधिक कठोर नियम एवं प्रथाएँ बना दी । फलतः बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि जैसी अनेक कुप्रथाएँ बढ़ावा पाती गई । नारी केवल चारदीवारी में कैद बाइसाहों, अमीर उमरावों और राजाओं के भोग विलास का साधन मात्र बन गई । भक्त और कवियों ने उसके माया एवं विलास के रूप को ही देखा । इसी कारण कबीर आदि भी कह उठे :-

“ एक कनक अरु कानि, दुर्गम छाटी दोय ”

अथवा

“ नारी की साँई परत, अंधा होत भुजंग ”

भक्ति एवं साधना की लहर भी मंद पड़ गई । महलों के विलासीरहीस, उमराव, भूपति, मदिरा मदन मानिनी में लोने लगे । कवि भी राजाश्रय में पहुँच गए और नारी के शृंगारिक रूप को राधा और कृष्ण के माध्यम से व्यक्त करने लगे ।

वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक की समय धारा में नारी डूबती उतराती प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित हुई विषमतापूर्ण अनुभवों को भोगती रही ।

समय के अनेकों अक्षयपत्तन, विषमताओं के बाद भी नारी अपनी इस प्रबल जिजीविषा के बल पर कुच्छों से शोषित होकर भी जीती रही जिनका सच्चा रूप भक्ति काल के साहित्य में कमाती,

मीरा, सहजोबाई, दयाबाई, बहिणाबाई, मुक्ताबाई तथा बावरी साहिबा आदि के रूप में देख सकते हैं ।

हिन्दी साहित्य में इन सन्त कवयित्रियों की अतिविशिष्ट भूमिका है, जबकि इसी युग में नारी को माया तथा क्लेश की घुणित सामग्री बनाकर उपस्थित किया गया था, फिर भी यह सन्त एवं कवयित्रियाँ काव्य साधना से कैसे जुड़ गयी ? अनेकानेक महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान आगे के अध्यायों में सन्त कवयित्रियों की वाणियों के अध्ययन के आधार पर किया गया है ।

**सन्त कवयित्रियों की वाणियों की पृष्ठभूमि तथा परिस्थितियाँ**  
=====

मानव जीवन के क्रमबद्ध उत्थान - पतन का अंकन इतिहास करता है किन्तु उसके अनेक क्रियाकलापों, सांस्कृतिक विचारों एवं कलात्मक भावों का अंकन साहित्य के एक माध्यम से होता है । यह साहित्य विभिन्न कालों की क्रमिक अवस्थाओं की विनिमताओं से गुजर कर आगे बढ़ता है । अनेक सामाजिक राजनैतिक एवं धार्मिक अंधे भरे तूफानों से आगे बढ़ता मानव अपनी प्रबल अजिजीविता के कारण मानव की संज्ञा पा रहा है । मानवीय गुणों के आधार पर ही यह सुर एवं असुर कहलाया तथा विद्वान्, तपस्वी, ऋषि, वैज्ञानिक, कवि एवं साहित्यकार अदि अनेक संज्ञाओं से गुणीभूत हुआ । इस साहित्य का वाहक ही कवि या साहित्यकार कहलाया ।

सन्त कवयित्रियों की वाणियों की पृष्ठभूमि तथा परिस्थितियों को हम निम्नलिखित उपशीर्षकों में विभाजित करके प्रस्तुत कर सकते हैं :-

- 1- राजनैतिक
- 2- सामाजिक
- 3- धार्मिक एवं
- 4- साहित्यिक ।

### 1- राजनैतिक पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ :-

सम्राट हर्ष वर्धन भारत के अंतिम सज्जन एवं महान शासक थे । उसके बाद निरन्तर भारत छोटे - छोटे टुकड़ों में विभाजित होता गया । सन् 1000 ई० तक आपसी शत्रुता वरम पर पहुँच गई पलतः विदेशी शासकों की नजरे इधर पड़ी । इससे पहले भी तिब्बत प्रान्त पर कई बार यवनो, तुर्को, शकों, हूणों, के आक्रमण हुए थे किन्तु सीमावर्ती राजाओं से पराजित हो वापस मुड़ जाते थे । मुहम्मद गौरी के कई आक्रमणों को पृथ्वीराज ने निष्फल कर दिया था किन्तु आपसी झूट और कलह के कारण अंततः पृथ्वीराज के साथ पराजय लगी और दिल्ली पर मुहम्मद गौरी का आधिपत्य हो गया ।

खिलजी आया । जिसका शासन बंगाल तक बढ़ा इसके बाद तुगलक, तैमूर और लोदी आये । इन सब वंशों का शासन लगभग दो सौ वर्षों रहा तथा इस बीच सोलह 06 शासकों ने शासन किया । बाद में बाबर और शेरशाह सूरी का शासन आया । दोनों काफी उदार थे , किन्तु इस्लाम की कट्टरता इनके साथ थी । इसके बाद हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन में देश का विकास होता रहा किन्तु आपसी युद्ध और धर्म तथा राज्य विस्तार की नीति हमेशा इनके साथ रही । उस समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ इस प्रकार उपस्थित कर सकते हैं :-

- 1- दिल्ली का सिंहासन वंश राज्यात्मकी की भाँति बलायमान रहता था ।
- 2- सभी शासक स्वतंत्र स्वेच्छावारी एवं विलासी होते थे ।
- 3- संदेव विदेशी एवं देशी राजाओं के युद्ध का श्रेय रहता था ।
- 4- राजनीतिक अस्थिरता एवं युद्धों की विभीषिका के कारण, विद्वानों एवं कवियों का प्रोत्साहन न था ।
- 5- भारतीय नारी शर की चारदीवारी में कैद एवं शासकों की विलासिता का शिकार थी ।
- 6- बाल विवाह, सती प्रथा एवं पर्दा प्रथा आदि कुरीतियाँ नारी पर लदती गई ।

इस काल में शासक पूर्ण स्वतंत्र थे, किसी को जनता के हितों का खयाल न था । सामन्ती गणों ने अध्यात्म को अपनी सुविधा अनुसार बना लिया था । मुल्ला, मोलवियों, पंडों एवं पुरोहितों ने जनता का ध्यान छींकर लोक - परलोक के धार्मिक अन्धविश्वासों में डबाया हुआ था । जनता सब कुछ सह एवं भोगकर भी मौन थी । "कोउ नृप छोई हमें का हानी, बेरी छाँठि न होइहो हानी" की भावना का प्रचार था । ऐसी परिस्थितियों में ही कर्तों ने अपनी जान की छक्का को एक नए रूप में लहराया । उनका काव्य भक्तानंद में पड़े जीवों को पार लगाने के लिए खरब कृपा से लिखा गया था -

हरि जी यह विचारिया ताही कछो कबीर ।  
 सब सागर में जीव हैं जे कोई पकड़े तीर ॥

## 2- सामाजिक पृष्ठभूमि और परिस्थितियाँ

सम्राट हर्षवर्धन के अन्तर भारतीय समाज पर अव्यवस्थित राजनीति की धूमिल छाया का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। समाज का विभाजन प्रायः दो वर्गों में हो गया जो उच्च वर्ग - निम्न वर्ग, राजवर्ग रंग वर्ग, सामन्त वर्ग - सर्वहारा वर्ग कहा जा सकता है। इसके दो अन्य वर्ग हिन्दू और मुसलमानों के थे। इन दोनों वर्गों के बीच की चौड़ी खाई को दोनों धर्मों के कुछ तत्कीर्ण विचारों ने निरन्तर गहरा और चौड़ा ही किया था। इन दोनों की खाई को यदि कोई सेतु जोड़ सका था तो वह था निर्गुणियों का साधना मार्ग। जहाँ न ईश्वर मंदिर में केव था और न अल्लाह केवल मस्जिद में मिलता था। उनका ईश्वर एक था जो घट-घट में, कण-कण में व्याप्त होकर सबकी आत्मा में छिपा बैठा था।

इन साधकों ने दोनों वर्गों को कड़ी फटकार खाई एवं धूर्त और प्रांखीजियों को खरी छोटी मुना मदान्ध, धर्मान्ध एवं कामान्ध व्यक्तियों नेत्र छोले तथा विभिन्न मत - मतान्तरों के बीच एक सरल मार्ग प्रस्तुत किया। उस समय का समाज प्रमुखतया हिन्दू और मुसलमान दो छेमों में बंटा था। मुस्लिम शासकों के साथ उलेमाओं का दल था तथा हिन्दुओं के साथ पुरोहित एवं पंडाओं का सहारा था। दोनों वर्गों के सामने नई समस्याएँ खड़ी थी। मुस्लिमों और उलेमाओं के सामने भारतीय संस्कृति एवं धर्म की नई समस्या थी और भारतीयों के सामने इस्लाम के आगमन से उत्पन्न धार्मिक व्यवस्था की खोज थी। व्यस्तता एवं विचाराता थी जबकि दोनों ही अपनी अपनी सुदृढ़ एवं कट्टर संहिताओं से जकड़े हुए थे। एकता की भावना का प्रसार एवं वर्गव्यवस्था का

विरोध उस समय के संत एवं साधकों ने किया था ।

निर्गुणधारा के कवियों ने पूजा, पाठ, जप, माला, रोजा, नमाज आदि अंधविश्वासों का छीर विरोध कर प्रेम तत्त्व के बढ़ावे पर बल दिया । भारतीय अछूत समाज में जहाँ संत साधक एक नए पथ का विकास कर रहे थे वही मुस्लिम विजेताओं की धर्म प्रचारक नीति को देखकर अधिकांश हिन्दू समाज में आत्मरक्षा तथा संस्कृति की रक्षा की भावना बड़ी तीव्रता से जाग रही थी । पुरोहितों, ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म को नियमों से इतना जड़ा कि उसका लचीलापन जाता रहा । यदि एक बार भी कोई व्यक्ति आचार भ्रष्ट हुआ तो पुनः उसका प्रवेश असम्भव था जबकि इस्लाम में ऐसा कट्टरपन नहीं था ।

खान-पान, रीति-रिवाज, शादी-विवाह आदि सामाजिक कार्यों में भयंकर विग्रह व्याप्त हो गया । यह बड़ा ही विकट काल था । सारा समाज तीन वर्गों में विभाजित होकर रह गया था :-

॥॥ उच्चवर्गीय समाज पूर्णतः पथभ्रष्ट होकर विज्ञान और यौवन, धन और मद के नशों में डूबकर स्वच्छन्द विवरण में लीन था । सारा समाज सामन्तवादी पद्धति पर आधारित था । इसका नायक सम्राट या बादशाह होता था जो लोगों को उनकी योग्यता, वीरता, दरबारी विद्वता के अनुसार धन जमीन आदि प्रदान करता था । वे इनका दुरूपयोग करते थे । कई पत्नियाँ एवं रखे रखते थे । आपसी गृह कलह एवं ईर्ष्या वरम पर थी ।

शाहु वर्ग से अशक्त या दीनहीनों के बीच से द्रव्य की गई स्वेच्छिणी अपने यौवन मद से महलों में अनियंत्रित स व्यभिचार, मदिरा

उस युग में इन्हीं के साथ विद्वान्, संत, भक्त, अध्यापक एवं व्यापारी वर्ग आता था। इस वर्ग के सभी लोगों का जीवन दुःखी एवं निम्न रहन-सहन के स्तर वाला था। इनके जीवन की आवश्यकताएँ बड़ी कठिनाई से जुड़ पाती थी। यह उस युग के समाज की बुद्ध नींव और आधार शिला तो थे किन्तु इनके जीवन में सम्मान का स्थान न था। उच्च एवं मध्यम वर्ग बिना वेतन के ही मनमानी बेगार करवाता और कष्ट देता। निर्धनता एवं विपन्नता के कारण दुर्व्यक्तियों का अभाव न था तथा ईमानदारी तस्ती थी। लोक - परलोक के साथ मंडो - पुरोहितों के हाथ में जा फँसता था। अतः धर्म के प्रति अन्ध विश्वास एवं श्रद्धा थी।

प्रकृति की मार भी इसी वर्ग पर थी। कभी अतिवृष्टि तो कभी अनावृष्टि। उस पर राजाओं रहीसों के करों की बाढ़। सैन्य एवं युद्ध की विभीषका तथा उनके रणक्षेत्र एवं आवागमन से उजड़ते हजारों छेत। परिणामस्वरूप इस वर्ग को मिलता उजड़ा घर, बीत्कार, करते बच्चे और भूख से कलपते रोते पेट। फलतः बाप-बेटे और सास-बहू में प्रायः नोक-झोंक, नित्य प्रति की तु-तु, में-में में समाज स्वयं ही उजड़ने लगा। स्त्रियाँ भार स्वरूप हो गई। पुरुष और नारी ने ही नारी का शोषण किया। इन सबके प्रति सन्त उदासीन नहीं थे। इस युग में माया से विमुख, सांसारिकता से दूर उच्च सन्त जन समाज सुधार के अद्भुत बनकर आए।

इस युग में भारतीय मुसलमानों की संख्या दिन व दिन बढ़ने लगी। पंजाब, काश्मीर, बंगाल और मध्य भारत आदि सभी जगह गांवों में मुसलमान रहने लगे। दोनों वर्गों के लोगों के प्रति विचारों

का आदान प्रदान बढ़ने लगा । मुसलमानों के हृदयों में भारतीय संस्कृति के प्रति मोह उत्पन्न हुआ । इसी युग में सुफ़ी कवियों ने भारतीय संस्कृति के परिवेष्टा में प्रेम प्रधान ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ कर दी थी । इन सबकेबीच राम-रहीम की एकता बढ़ने लगी । समाज में एकता के साथ एक नवीन वेतना प्रस्तुत हुई । ऐसे ही समय सन्त कवियत्रियों ने अपनी वाणियों द्वारा समाज में एकता, प्रेम, विश्व बन्धुत्व और कर्तव्य परायणता का प्रसार करने का प्रयत्न किया ।

### 3- धार्मिक पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ

सन्त कवियत्रियों के काव्य में धार्मिक पृष्ठभूमि एवं परिस्थिति उस वृहत् धारा का संयुक्त इतिहास है, जिसमें वैदिक एवं पौराणिक वेतनाओं के साथ बौद्ध, सिद्ध, नाथ और सुफ़ी आदि मत - मतान्तर तथा भक्ति आन्दोलन भी सम्मिलित हैं । बौद्ध धर्म ब्राह्मण धर्मों की कट्टरता एवं संकुचित भावना से उभरकर कर सामान्य जन जीवन की वेतना बनकर आया और इसके भक्तावस्थाओं पर मध्ययुगीन साधना का स्वरूप निर्मित हुआ । इस समय बौद्ध धर्म की विचारधारा अपने परिवर्तित रूप में शैव और वैष्णव भक्ति के साथ ऐसी विकसित हुई कि बौद्ध धर्म के सभी स्थल शैव एवं वैष्णव भक्ति के स्थल बन गए । यह बौद्ध धर्म घटता जातक अपनी विरासत का टिमटिमाता दीपक सन्त साधना के रूप में छौड़ गया था । कालान्तर में पता ही नहीं चला कि विश्व व्यापार बौद्ध धर्म कहाँ विकसित हो गया । बूढ़ तो विकसित और शिव के रूप में जात्मसात हो रहा था, हाँ जो शोध बधा था वह बौद्ध धर्म नहीं बल्कि सन्त साधना या निर्गुणधारा के रूप में था ।



जिस प्रकार वे संतों के "राम" द्वारध के पुत्र या कोशल्या के शिशु अथवा सीता के पति या रावण के संहारक नहीं थे, उसी प्रकार महायानी आचार्यों के बृह कपिलवस्तु के शूद्रोद्धत के पुत्र नहीं या यशोधरा के पति नहीं अथवा ज्ञान प्राप्ता बोधि वृक्ष के नीचे वाले गया के बृह नहीं बल्कि यह वे बृह थे जो संसार में नहीं आए थे उन्होंने बृह के केवल माया रूप को भेजा था ।

एक ओर जहाँ धर्म का स्वरूप परिवर्तित हो चला था, वहीं दूसरी ओर इस युग में धार्मिक स्थिति अन्धविश्वासों, रुढ़ियों से परिपूर्ण सामान्य जनता के लिए कठोर लड़ी बनकर जकड़ती जा रही थी । साधारण जनता सुनी पक्षीरों के वमत्कारों अथवा पुरोहितों के छल - छद्म पूर्ण आडम्बरों में उलझती जा रही थी । नारी को घृणा एवं विकृति का पात्र मान लिया गया था । यहाँ तक कि सन्त साधकों ने भी इसकी उपेक्षा कर दी थी फिर भी इस युग में कुछ ने साहस के साथ सन्त साधना में दीक्षित होकर संघर्ष और त्याग का मार्ग अपनाया ।

इस युग की सन्त साधना ने समाज में प्रचलित सम्प्रदायों एवं धार्मिक क्षेत्रों में अपनी प्रतिक्रिया का प्रभाव डाला था । इस युग के इतिहास को नया मोड़ देने में इनकी धार्मिक पैतृता ने पर्याप्त प्रभाव डाला । अन्य धार्मिक सम्प्रदायों, मन - मतान्तरों पर इनका क्या प्रभाव पड़ा ? इन सबका सीमा में उल्लेख करना ओक्षणीय होगा ।

### भक्ति आन्दोलन

भक्ति का अर्थ ज्ञात वैदिक काल से प्रवाहित होता चला आ रहा है । ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों के साथ विष्णु, एवं शिव के

अवतारों की परिकल्पना की गई तथा रामायण एवं महाभारत काल में अवतार वाद को प्रचुर बढ़ावा मिला । इस युग में श्रीराम और श्रीकृष्ण रूपों को इतना अधिक महत्त्व मिला कि वैदिक कालीन इन्द्र अग्नि, वसुधा आदि देवता भी गौण हो गए । ब्राह्मणों की कठोरताओं एवं कर्मकाण्डों की प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्ध और जैन धर्म उदित हुए । किन्तु जिस सरलता सहजता से यह भारत ही नहीं समस्त एशिया में फैले उठी गति से प्राप्त मान भी हो गए । फलतः अवतार पुनः व जीवित हो भारतीय जनमानस में अपना स्थान बनाए रहा ।

भक्ति आन्दोलन का यह विकास दक्षिण भारत से अलवार भक्तों के माध्यम से हुआ । दक्षिण के इन अलवार वैष्णव संत एवं आडिहार शैव संतों की शिक्षा अश्वरी थी तथा निम्न पुत्र जन्मा थे अतः इनमें विमृष्टता प्रचुर थी । इनके भक्ति गीत मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी होते थे । यह भक्ति धारामहाराष्ट्र को सींचती हुई उत्तर भारत में आई । दक्षिण में उत्पन्न इस भक्ति को उत्तर में लाने का श्रेष्ठ स्वामी रामानन्द को था । स्वामी जी ने जाँति - पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे तो हरि को होई, उक्ति के साथ सभी को एक भाव से अपना लिया । इनमें रेदाक, वमार, धना जाट तथा सेना वगैरह नाई और कवीर जुलाहा अग्रणी थे ।

भक्ति आन्दोलन के साथ कई सन्त एवं साधक जुड़ गए । सगुण धारा ने राम और कृष्ण के अवतारी रूप को प्राथमिकता दी तथा निर्गुणधारा वालों ने ज्ञानमार्ग और प्रेममार्ग को अपनाया ।

प्रेमधारा में कुतुबन, मन्नन, जायसी, प्रफुल्ल प्रेमाश्रयी थे तथा ज्ञानमार्ग की धारा में कबीर, दादू, नानक, कमाली, सहजाबाई आदि थीं । जिन्होंने एक नई दिशा प्रदान की ।

### बौद्धमत

ईसा की लगभग चौथी और पाँचवी शती के मध्य भारत में बौद्ध धर्म का जन्म हुआ । महात्मा बुद्ध ने वार जाय सत्त्यों के निरोध का मार्ग प्रतिपादित किया । मध्यम मार्ग की इस साधना को बड़ा बल एवं प्रोत्साहन मिला । इसे "मध्यमा प्रतिपदा" की श्रुति मिली । बुद्ध ने वैराग्य भाव के साथ ज्ञान एवं सरल साधना को अपनाया ।

सन्तों के साहित्य में इस बुद्धवाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । गौतम बुद्ध धर्म लोक वेद आदि कर्मकाण्डों तथा अन्धविश्वासों के विरोधी थे उसी प्रकार सन्त साधक इस कर्मकाण्ड के विरोधी थे । बौद्ध धर्म की इसी विचारधारा को विकसित कर सन्त साहित्य अपने वेद विरोधी स्वर को इतना प्रबल बना सका । उन्होंने धर्म के ठेकेदारों मुल्ला - मौलवियों एवं पुरोहितों का परित्याग कर दिया । इन्होंने भी दुःखों को जीवन का सबसे बड़ा कोशा बताया है । महिला सन्त व्यवस्थितियाँ भी इन्हीं विचारों के साथ समाज में नव चेतना प्रसारित कर रही थी । यथा -

बूकर ज्यों भूंसत फिरै, तामस मिलावा बोल ।

घर बाहर दुख रूप है, बुधि रहें डाँवा डोल ॥- सहजाबाई

इन संतों में चाहे कबीर हो या नानक अथवा सहजाबाई हो या दयाबाई सभी संतार को प्रमत्त मानते हैं ।

### सिद्धमत

बुद्ध के निर्वर्णा के साथ कालान्तर में बौद्ध धर्म महायान, हीनयान, वज्रयान, सहजयान आदि कई मार्गों में विभक्त हो गया। तंत्र मंत्र की अधिकता से यही मंत्रयानी कहलाए और सहजयानी ही सिद्ध साधक कहलाए। सिद्धों में वर्ण भेद नहीं था। इनकी संख्या 84 थी। आठवीं से 14वीं शताब्दी तक इनका प्रभाव रहा। इन्होंने वेद पुराण आदि कर्मकाण्डों का परित्याग कर सहज साधना पर बल दिया। सिद्धों में निजी स्वार्थ एवं पाछण्ड प्रविष्ट हुआ। फलतः वे जल्द ही अपनी अस्मिता समाप्त कर गए। सन्त साधक इनसे प्रभावित थे।

### नाथ मत

परवर्ती बौद्धों की तामसिक साधना एवं उनके मद्य, मांस, मैथुन आदि उपद्वानों के विरोध में जो क्रान्ति प्रादुर्भूत हुई वही सिद्ध सम्प्रदाय तथा नाथ पंथ के रूप में विकसित होकर स्वतंत्र एवं शक्ति सम्पन्न बनी। इस मत के प्रमुख प्रवर्तक आदि नाथ {भगवान शंकर} माने जाते हैं। मध्ययुगीन विचारधारा में गोरक्षनाथ प्रमुख हैं जिन्होंने पंथ को पुनः स्थापित एवं संगठित किया। नाथ पंथ का प्रमुख प्रभाव, नेपाल, उत्तरी भारत, आसाम, एवं महाराष्ट्र में रहा है। इस पंथ में गुरु का प्रधान स्थान है। गुरु ही ज्ञान का शब्द देकर शिष्य का कल्याण करता है। सन्त मतानुयायी इसी गुरु और शब्द की प्रमुखता देते हैं। जो नाथ पंथ से प्रभावित हो ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड में प्रवेष्ट कर अमृतानन्द भी नाथ पंथी साधना है जिसे सन्त साधकों ने अपनाया है।

### सूफी मत

इस्लाम के रहस्यवादी साधक सूफी कहलाते हैं। यह हृदय की आन्तरिक श्रुति एवं प्रेम को धर्म का प्रमुख तत्त्व मानते हैं। इनके अनुसार ईश्वर सौन्दर्य एवं प्रेम स्वरूप है। यह इन्सान को ही ईश्वर का रूप मानते हैं। इंसान का साधना पूर्ण जीवन का यात्रा है। "सात्त्विक" है। इस मत का प्रकाश बारहवीं शती में छवाजा मुहम्मद दीन क़िस्ती के समय से माना जाता है। जग जग मत होने पर भी सभी के सिद्धान्त और उद्देश्य एक ही है। सूफी ऐश्वर्यवाद में क़िस्ती रखते हैं। ईश्वर को पाने के लिए प्रेम ही प्रधान तत्त्व है। अतः इन्होंने भारतीय पौराणिक कथानकों का आधार ग्रहण कर प्रेम प्रधान काव्य लिखे। हिन्दी साहित्य में निर्गुण सन्त परम्परा पर भी सूफी मत का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। तीनों में भी प्रेम की मस्ती झलकती है। वह प्रेम की पीड़ा सन्त कवयित्रियों के हृदय में ईश्वर विरह उत्पन्न करती है। प्रेम का दीवाना हृदय पूर्ण - पूर्ण होकर किसी अस्तित्व में मिल जाता है तो महा तृप्ति एवं महानन्द प्राप्त होता है :-

प्रेम दिवाने जो भए, मन भयो कनादूर ।

उके रहे छूमत रहे, सहजो देख हूँदूर ॥ - सहजोबाई ।

### सन्त मत

हिन्दी सन्त साहित्य भारतीय वाङ्मय की अमूल्य निधि है। यह जन जीवन का साहित्य है तथा ये कवि भारतीय जनता के सच्चे प्रतिनिधि हैं। इन्होंने संकीर्ण घेरे को तोड़ कर समष्टि के विस्तृत क्षेत्र में विचरने का प्रयत्न किया है। इनके साहित्य में नित्य तत्त्व प्रबल है। मानव को सावधान करते हुए जीवन एवं जगत् की क्षण -

भेगुरता का ज्ञान करा दिया है । आत्मा अजर एवं अमर तथा परमात्मा का अंग है । शरीर माया का आवरण है । उन्होंने ये सब ज्ञान तत्त्व अनुभव के सहारे बताया है । निगमागम या पुराणों का सहारा नहीं लिया ।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियों का सन्त कवयित्रियों पर प्रभाव :-

ज्जादि और ज्जार्थिव की साधना में रत , आत्मा, एवं परमात्मा में अद्वैतता का निर्वहण करने वाली सन्त साधना निर्गुण सन्त सम्प्रदाय के नाम से अभिहित हुई । युगों - युगों के अनुभव जन्य गृहीत सन्तों और साधुओं के ज्ञान, सत्संगति एवं सद्वाणियों से प्रभावित होकर इन नारियों में भी निर्गुण निराकार, ब्रह्म तथा साधना एवं उपासना की ओर प्रवृत्त होने की भावना जागृत हुई । पूर्ववर्ती समस्त परम्पराओं और परिस्थितियों का प्रभाव उन उन कर सन्त कवयित्रियों की वाणियों पर भी पड़ा है ।

सन्त कवयित्रियों की वाणियाँ  
=====

निर्गुण काव्य, जो युग की व्यथित एवं पीड़ित केतना को संघर्ष से पलायन और क्लम में आश्रय पाने का संकेत दे रहा था, संघर्ष मूलक स्त्रियों के प्रति कोई सहानुभूति रखने में असमर्थ था, पर भावना की इस धारा में नारियों का अभाव नहीं है, क्योंकि युग - युगों से समाज में पुरुष की प्रधानता रही है । कदाचित् इसी कारण उस युग में नारियों की उपेक्षा थी । इस उपेक्षित दृष्टिकोण के उपरान्त भी इस क्षेत्र में कुछ नारियों के साहित्यिक वर्णन पड़े किन्तु परवर्ती हिाव्य समाज में उस पर अधिक ध्यान नहीं दिया । फलतः वह काव्य

कय काल गर्त में ही जमा गया । इसी कारण इन नागर्यों के स्वीय में इतिहास या काव्य पूर्णतः मोन है । जन श्रुति एवं विभिन्न श्रोतों के आधार पर जो सामग्री प्राप्त हुई है उसे निम्नलिखित शीर्षकों में प्रस्तुत किया गया है :-

॥१॥ जनश्रुति या विभिन्न श्रोतों से प्राप्त प्रचलित वाणियाँ ।

॥२॥ प्राप्त हुई तनस्त प्रामाणिक वाणियाँ ।

॥३॥ जनश्रुति या विभिन्न श्रोतों से प्राप्त प्रचलित वाणियाँ -

उमा

नागरी प्रचारिण : सत्री की अकाशित हस्तलिखित खोज रिपोर्ट में उमा का उल्लेख किया गया है जो किसी तन्त्र गुरु का शिष्यत्व ग्रहण कर तन्त्रगुरु का भेद क जानने की जगह प्रतीत होती है । निरावार ब्रह्म की निवेदना एवं उफी त के आभास से यह ज्ञात होता है कि उनका जीवन काल वही होगा जब भारतीय जनता का स्वाय योग, ज्ञान और प्रेम की जोर था । यद्यपि उनके जीवन ~~काल~~ में कोई जानकारी नहीं दी गई है । उनके द्वारा रचित कुछ पदों से पता चलता है कि उनकी भाषा अरिपक्व एवं ग्रामीण शब्द प्रधान है । ज्ञान और योग से काफी परिचय है । प्रस्तुत पद से फग छेले की कामना स्पष्ट है :-

ऐसे फग छेले राम राय, पुरत गुहागुहा अन्तु जाय ।

पत छ तत की बन्धो है बाग, जामे सामन्त कोही रमत फग ॥

उनकी भाषा में राजस्थानी प्रभाव परिलक्षित होता है तथा साधना में किसी विशिष्ट मार्ग का अवलम्बन नहीं दृष्टिगत

होता, कदाचित् ज्ञानमार्ग की विषम कठिनाइयों के साथ अपने हृदय की नारी सुलभ सरलता का समन्वय कर अमूर्त ब्रह्म एवं ताकार राम में तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है ।

### मुक्ताबाई

इनका उल्लेख मिश्र बंधु विनोद में मिलता है । इसके अतिरिक्त जगद्विजय मोहन शर्मा ने अपनी पुस्तक "हिन्दी को मराठी संतों की देन" में भी इनका उल्लेख किया हुआ है । किन्तु यह महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर की बहिष्ता थी । उनमें विचारोपस्था से ही काव्य प्रतिभा निखरने लगी थी । इनके जीवन के संबंध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है ।

इनके कुछ पदों में निर्गुण ईश्वर का वर्णन है तथा हठयोगी सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया गया है किन्तु दुर्भाग्य है कि उनके अधिक पद प्राप्त नहीं हैं । भ्रमर, गुफा, रहस्य, सहज दल आदि योग मार्ग का प्रभाव दर्शाती है । साधु के दर्शन एवं सत्संग के महत्त्व को बल देती है :-

"जहाँ तहाँ साधु दत्ता, आपहि आप बिकाना"

साधना में एक ऐसी ही स्थिति आती है जहाँ सद्गुरु की ओर शिष्य एक ही दत्ता हो जाती है । सतीम - अतीम में लीन हो जाता है :-

"सद्गुरु के दोनो बराबर एक दत्ता भो गई ।"

योग मार्ग की भावना से अधिक समस्या और साधना की तीव्रता है । इनके ये दो चार पद मराठी साहित्य संकलनों में प्राप्त होते हैं ।



## पार्वती

“सेवादास की वाणी” नामक ओक कीर्तों की वाणियों के ग्रंथ में कुछ पद पार्वती जी के नाम से संग्रहीत हैं। इनके जीवन काल संबंधी कोई जानकारी नहीं दी गई है उनके कुछ पदों से इतना ज्ञात होता है कि निस्पृह एवं निस्वार्थी त्यागी गुरु की शिष्या थी। जीवन के सांसारिक मोह से विराग और विकर्षण की भावना ने उनके पद जोत-प्रोत है। गुरु की सेवा द्वारा मुक्ति संभव है, ही उनके पदों का सार है।

राज्यक योग मार्ग उनके गुरु की दीक्षा है। योग मार्ग में घट के नाद और बिन्दु का प्रकाश जिन्हें प्राप्त हो चुका है वही सार्थक पुरुष है :-

धन जीवन की करे न आस,  
वित्त न राखे कामिनी पास।  
नाद बिन्दु जाके घट जरे,  
ताकी सेवा पारवती करे।

योग - कर्मान एवं गुरु महिमा के साथ पूर्ण प्रेम की प्रधानता भी दिखती है। विषयवस्तु कम होने पर भी उस युग के अनुसार इसका विशिष्ट महत्त्व है।

## सन्त कमाली

सन्त कमाली के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ तो इन्हें सन्त कबीर की पुत्री मानते हैं तो कुछ उनकी शिष्या तथा किसी अन्य की पुत्री मानते हैं। इनका समय जीवन काल आदि

कभी भी विवाद स्पष्ट है किन्तु इतना निश्चित है कि ये कबीर की परवर्ती है तथा कबीर के उपदेशों का इन पर प्रभाव है ।

विभिन्न शोध रिपोर्टों में इनके तन्त्र में अब तक केवल तीन चार पद ही प्राप्त होते हैं जिसके अनुसार वे ऐश्वर्यवाद की स्थापना करती हैं तथा अपने तन्त्र ही का कुछ विश्वास मानती हैं :-

साधो हमसे बढत हमारी ।

मेरी बोंजा उर में ही बजाऊँ, दूजो न बजावणहारी ।

हमई ग्वाल हमहीं गोपी, हमई है गिरधारी ॥

बावरी साहिबा :-

बावरी पंथ की स्थापिका बावरी साहिबा के जीवन एवं साहित्य के संबंध में यद्यपि किंचित जानकारी नहीं है तथापि इनका पंथ मध्यकालीन अन्य पंथों की भाँति प्रादुर्भूत होकर अपने संरक्षण में ही रत नहीं रहा बल्कि उसने एक नया दार्शनिक दृष्टिकोण भी प्रदान किया ।

बावरी साहिबा के संबंध में उनके पंथ के मतों से की अधिक स्पष्ट एवं प्रामाणिक जानकारी नहीं मिल सकी । विभिन्न जनश्रुतियों एवं खोज रिपोर्टों से कई बातें स्पष्ट हो रही हैं कि वे निर्गुण ब्रह्म की उपासिका थी तथा गुरु की महिमा एवं शिष्यों का तत्सम आवायक समझती थी । ज्ञान और ज्ञान में उनकी गहरी पेश थी । उनके जो दो - तीन पद प्राप्त हैं उसमें योगमार्ग की बात बड़ी स्पष्ट ढंग से कही गई है जो उनके ज्ञान और काव्य वाच्य को स्पष्ट प्रकट कर देती है :-

अजपा जाप सकल घट बरते जो जाने सोई पेछा ।  
 गुरु गम जोति अगम घट बाता जो पाया सोई देखा ॥  
 में बंदी हौ मर्म तत्त्व की जग जानति की भोरी ।  
 कहति "बावरी" सुनो हो वीर सुरति कमल पर डोरी ॥

वस्तुतः यह सत्य भी है कि योग मार्ग के द्वारा अनुभूति ही सबसे बड़ी वस्तु है और गुरु की कृपा से सब संभव है ।

### अन्य कवियत्रियाँ

महाराष्ट्र की हिन्दी कवियत्रियाँ बहिणाबाई और बयाबाई भी इसी संत कवियत्रियों की पंक्ति में आती है किन्तु दुर्भाग्य है कि इनके संबंध में अब तक कोई पर्याप्त जानकारी या पद आदि नहीं प्राप्त हुए है । इनके संबंध में आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपनी पुस्तक "हिन्दी की मराठी संतों की देन" में उल्लिखित किया है । जहाँ इन्हें अनुमानतः सत्रहवीं और अठाहरवीं शताब्दी के मध्य माना गया है । कुछ मराठी विद्वानों ने इनके कुछ पद मराठी में बताए हैं । हिन्दी में इनके पद नहीं मिल सके । काश्मीन की संत कवियत्रियों में शान्तिबाई का नाम आता है । जिन पर अभी कोई प्रामाणिक रिपोर्ट नहीं मिल सकी है । जनश्रुति के आधार पे पर ये निर्गुणधारा की योग और ज्ञान की, समर्थिका थी । आज भी उनके कुछ पद वहाँ की स्थानीय भाषा में प्रचलित हैं ।

### 2- प्राप्त हुई समस्त प्रामाणिक वाणियाँ

सन्त कवियत्रियों के जी न काल तथा उनके दार्शनिक दृष्टिकोण पर विस्तृत एवं पूर्ण परिचय देने वाली संत साधिकाओं



निर्गुण भक्त में साध की महिमा निराली है । आध्यात्मिक वातावरण में ईश्वर का सान्निध्य उसकी संगति से ही संभव है । ~~अतः~~ साध और ईश्वर में कोई भेद नहीं है । उसकी संगति से तो काग भी हंस हो जाता है :-

"सहजो संगत साध की काग हंस हो जाय ।"

जीव को घोराली कोटि योनियों में जीना मरना पड़ता है तथा मृत्यु को भी बार-बार अवस्थाएँ पार करनी पड़ती है । उन सबका कर्णन सहजो ने स्वाभाविक रूप से किया है । युवावस्था में ध्यान न दिया तो बुढ़ापे में जब मृत्यु पास होती है आदमी पछताता है । उन्होंने पारिवारिक मोह त्यागने के लिए उसकी सभी बुराइयों का भी कर्णन किया है । यदि ईश्वर प्राप्त करना है तो निमग्नता आवश्यक है ।

प्रेम का भी अपना अलग महत्त्व है । जो प्रेम में डूबा तो मदमस्त हो जाता है :-

" प्रेम दिवाने जो भ्रष्ट, जाति वर्ण गई छूट ।"

यह संसार नश्वर है अतः नाम स्मरण ही प्रमुख है । अजपा जाप कर ईश्वर का साक्षात् करना चाहिए । यह ईश्वर षट-घट में व्याप्त है । सोलह तिथियों और प्रत्येक दिनों में क्या करना चाहिए इसका भी सहजोबाई ने स्पष्ट कर्णन कर अपने जीव के मुक्ति का मार्ग खोल दिया है ।

### ॥ च ॥ दयाबाई

दयाबाई भी श्री चरणदास की शिष्या है । कुछ लोग उन्हें सहजोबाई की घेरी बहन भी कहते हैं । इनके दो ग्रंथों का उल्लेख

नागरी प्रचारिणी सभा की प्रकाशित खोज रिपोर्ट में मिलता है । जो अब दयाबोध एवं विनयनालिका को मिलाकर "दयाबाई की बाणी" नाम से केल्वेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित किया गया है । कुछ विद्वान दयादास या दया नाम के कारण विनयनालिका को इनका ग्रंथ नहीं मानते ।

इनको वरणादासी सम्प्रदाय का माना गया है तथा इनके संपूर्ण ग्रन्थ को कतिपय अंगों में विभाजित किया गया है :-

॥१॥ गुरु महिमा ॥२॥ गुमिरन ॥३॥ सूर ॥४॥ प्रेम  
॥५॥ वेराभ्य ॥६॥ साध ॥७॥ अज्ञपा - जाप ।

संत मत में गुरु का विशिष्ट स्थान है । दयाबाई भी गुरु में ही ब्रह्म की झलक देखती है जो उनके सूक्ष्म रूप को न देखकर स्थूल रूप को देखता है । वह पशु तुल्य है :-

सतगुरु ब्रह्म स्वरूप है, जान भाव मत जान ।  
देह भाव माने दया, ते हे पशु समान ॥

इस संसार साधर या अंध कूप से गुरु ही मुक्ति दिला सकता है । गुरु ही हरि रूप है गुरु की कृपा के बिना कुछ भी संभव नहीं है ।

निर्गुण मत के अनुसार ईश्वर की वर्तमानभूति ही सब कुछ है । अनुभूति की इस वर्तमानस्था के अभाव में दर्शन भी तथ्य रहित थोथा ज्ञान या वाद बनकर रह जाता है । इसलिए प्रभु की वंदना, उसका स्मरण अति आवश्यक है। इस पर सगुणोपासना का भी प्रभाव दिव्यता है । यथा :-

"राम नाम के लेत ही, पातक बरे अनेक ।"

निर्गुण मार्ग में चलने वाला व्यक्ति शूर होता है जो अपनी वात्सलाओं से विमुख होकर इस प्रेम के पथ में आगे बढ़ता है। प्रेम मार्ग के लिए कवीर की भांति इन्होंने कहा है :-

"सीस उतारे धुई धरे, जब पावे निज ठाम ।"

प्रेम की विह्वलता भी अनीसी है। प्रेम का दीवाना दुनिया में अनभिज्ञ होता है :-

"प्रेम मग्न मद्गद वदन, पुनकि रोम सब अंग ।"

वैराग्य के दोहों में संसार की नश्वरता का सुन्दर चित्रण किया गया है। यह संसार क्षणिक एवं भ्रम जाल मात्र है। औस की बुंद और तराय का निवास जैसा जगत एवं जीवन है। यह सब धीरे-धीरे ही देखते नष्ट हो जाती है।

निर्गुण साधना में साधु एवं सत्संग का विशेष महत्व है। उससे ही आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त होती है। साधु सुख-दुःख में सदा समान रहते हैं तथा परोपकार एवं भलाई करते हैं।

विनयमालिका में ईश्वर के समस्त अवतारी नामों को बत्तलसर दया की प्रार्थना की गई है तथा उन्हीं के द्वारा की गई लोक भलाई का कर्ण करके वे ही दुःख को उद्धार करने की प्रार्थना है। इसमें सगुणोपासना का पूरा प्रभाव है।

सन्त कवियित्रिया : विचारधारा  
=====

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का प्रथम वर्ण भीष्म सांस्कृतिक संघर्ष एवं जीवन मूल्यों के संकल्प का युग है। उस युग

में समस्त भारतीय एवं भारतीय साधना पथों के आत्मगत कर जीवन की सहज अनुभूतियों के आधार पर इन सन्त साधकों एवं साधिकाओं ने जिस मानवीय सत्य की प्रतिस्थापना की है वह आज की अकल्पनीय है।

सन्त कवीयुक्तियों के साहित्य में भारतीय संस्कृति और उसकी आध्यात्मिक विचारधारा के सभी अंग प्रस्तुत होते हैं। यह सामग्री जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही कम विवादास्पद है भी। इसी कारण अब तक के इतिहास विद्वानों एवं शास्त्रियों को अपनी विषमताओं से ऊनी देता रहा है। हिन्दी साहित्य के पुरुष सन्त साधकों की भाँति महिला सन्तों का दार्शनिक पक्ष एवं सामाजिक चिन्तन बड़ा प्रबल है जिस पर दृष्टिपात करना अविवेकपूर्ण एवं अविवेकपूर्ण है।

### दार्शनिक विचारधारा -

साक्षात्कार मूलक अनुभव को दर्शन कहा गया है अर्थात् "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" के आधार पर वस्तु के सत्य भूत तात्त्विक स्वरूप की पूर्णज्ञानकारी ही दर्शन है। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हीगेल के अनुसार दर्शन ज्ञान की यात्रा, बुद्धि का विकास और विचारधारा की प्रगति है। अतः दार्शनिक ब्रेडले दर्शन आभास और छाया अथवा प्रतिबिम्ब और माया को समझ कर इनके पीछे छिपे हुए आधारभूत सत्य का अनुसंधान करना मानते हैं। दर्शन तर्क एवं बुद्धि के पैरों पर से परे होता है अर्थात् मोन ही फ्रेड दर्शन है। यह मोन ब्रह्म के विस्तार का गम्भीरता जन्म मोन है। यह तर्क वाणी और बुद्धि विस्तार से परे है।

### दर्शन और धर्म

दर्शन और धर्म का अन्योन्याश्रित संबंध है। बिना



धार्मिक व्यावहारिकता के दर्शन की प्राण प्रतिष्ठा निष्कल है । महान क्रोस के अनुसार कर्म और दर्शन, दर्शन और विचार तथा व्यवहार और सिद्धान्त आत्मा के शाश्वत अंग हैं । दर्शन समाज से जुड़ा है । इसी कारण सामान्य जन भी परमात्मा, आत्मा, प्रारब्ध और माया का तात्पर्य समझता है ।

### दर्शन का उद्देश्य

भारतीय दर्शन का मूल मंत्र - "आत्मानं विदि" - आत्मा को जानने की ओर रहा है । तत्त्व की व्याख्या करने में भारतीय दर्शनाचार्यों ने अनुभव उल्टा ही गम्य विषय की ओर उल्टा ध्यान नहीं दिया जितना की अनुभव कर्ता की ओर । दर्शन अनुभव के विभिन्न क्षेत्रों का अन्वेषण करता है । वह ब्रह्माण्ड अथवा समस्त जगत् को एक साथ देखने का प्रयत्न करता है । दर्शन की दृष्टि मनुष्य की सौन्दर्य मूलक नैतिक तथा आध्यात्मिक सम्भावनाओं की ओर होती है । दर्शन हमारे सामने अज्ञान तथा चिराट जगत् के अज्ञेय रूपों को उपस्थित करता है । तथा हमें जीवन की पृथ्वी स्थितियों से ऊपर उठाकर विश्व ब्रह्माण्ड केन्द्र की हलक में स्थापित करता है ।

भारतीय दार्शनिकों ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से विश्व - पहेली को सुलझाने का समस्त प्रयास किया है । महर्षि या गुरुदेव ने आत्मा को ही क्रेठ माना है । उनके अनुसार आत्मा को ही प्रत्यक्ष करना चाहिए । तत्त्व प्रयास एवं ध्यान इस ओर ही रहना चाहिए क्योंकि दर्शन है, श्रम है, मन है तथा विज्ञान से तब कुछ जाना जा सकता है । भारतीय दर्शन की संपूर्ण उपलब्धि उपनिषदों में

निम्नलिखित है इसी कारण इन्हें वेदान्त या ज्ञान की धरम सीमा कहा गया है ।

### सन्त कवियित्रियों की दार्शनिक विचारधारा

इन कवियित्रियों की विचारधारा किसी शास्त्र पर आधारित नहीं है क्योंकि इनकी दृष्टि संतों की भाँति शास्त्रों से अधिक अनुभूति पर आधारित थी । उनके विचार से किसी एक शास्त्र या धारा से जुड़ कर साम्प्रदायिकता के तन्त्रान्त्र दोषों से लिप्त हो जायगी । इसलिए इन्होंने अपने दर्शन की धारा उपनिषदों, नायों, सिद्धों और ऋषियों की प्रेममयी अनुभूतिगुप्त चिन्तनशीलता पर आधारित की । डा० रामकुमार वर्मा ने इसी कारण कहा है - "जैसे एक बूंद मधु निर्माण के लिए सेकड़ों पुष्पों के मधु कोषों का रस तथा सेकड़ों पुष्प तीर्थों की वातावरण निम्नलिखित रहती है । उसी प्रकार ही सम्प्रदाय का दर्शन अनेक ऋषियों एवं गुरुओं की अनुभूतियों का समुच्चय है ।"-

#### ब्रह्म

सन्त कवियित्रियों की धारणा में ब्रह्म की अनुभूति सामूहिक न होकर व्यक्तिगत अनुभूति पर आधारित है जो प्रत्येक व्यक्ति की अलग अलग चिन्तनधारा पर निर्भर होती है । वृत्ति सन्त कवियित्रियाँ सीधी सीधी भावुक भक्त हैं इसी कारण उनका ब्रह्म चिन्तन वैज्ञानिक

पदति पर आधारित न होकर स्वानुभूति पर का देने वाला है ।  
 इसके अनेक नाम हैं जो रहीम, तुदा, केशव, राम, सत्नाम, अलख  
 निरंजन, हरि, मोहन आदि नामोंके साथ आत्मा के भीतर ही प्राप्त  
 होता है :-

“मन माहीं बेराग है, ब्रह्म माहिं गलतान ।  
 तहाये अगम अनित्य है, आत्म को नित जान ॥”-।

इन कवियत्रियों ने सर्वत्र नाम की महिमा का गान किया  
 है । वे परम तत्त्व की व्याख्या तो करना चाहती है किन्तु अनुभूत्यात्मक  
 होने के कारण सुसंगत व्याख्या करने में असमर्थ रहती है । वस्तुतः  
 अविगत, अलख, अनुपम ब्रह्म के साक्षात्कारजन्य सुख या स्वरूप को जो  
 बतलाना चाहे उसे निराश ही होना पड़ेगा । क्योंकि ब्रह्म अक्षर  
 है शाब्दातीत है । यह ब्रह्म एक होते हुए भी सर्वत्र समाया हुआ है ।  
 इन्होंने एक ब्रह्म की सत्ता स्वीकार कर एवेश्वरवाद का सदैव सुना  
 कर समस्त मानवों को एक मंत्र पर लाकर एकत्र करने की चेष्टा की है ।

यह सन्त कवियत्रियाँ शंकर के औत्तवाद से प्रभावित  
 जान पड़ती है तथा साधना के क्षेत्र में सूफियों की प्रेमानुभूति हठयोग  
 में नाथपंथियों एवं भक्ति क्षेत्र में विशिष्टाद्वैत का स्पर्श करती जान  
 पड़ती है । इन्हीं मूल अधिकठान तक पहुँचने के लिए “सबद” का  
 आश्रय ग्रहण करने की सलाह दी है जो सतगुरु के उपदेश एवं विन्तन  
 से जागृत होता है ।

वस्तुतः ये कवियत्रियाँ निर्गुणधारा का प्रतिनिधित्व करती हैं किन्तु जब वे ब्रह्म रूप निरूपण में अतर्क्य रहती हैं तो सगुण रूप को भी देखने लगती हैं :-

"वही" आप परगट भयो, ईश्वर लीलाधार ।

माहिं अजुध्या और व्रज, कौतुक किए आर ॥"-<sup>1</sup>

वस्तुतः इनका ब्रह्म निराकार है किन्तु नारियोजित उस स्वभावात् प्रेम भक्ति में वे सभी रूपों को ग्रहण करने लगती हैं जो अनुभूति प्रधान है ।

जीव

आचार्य शंकर ने अंतःकरण के अविच्छिन्न चैतन्य को जीव बताया । उनके अनुसार शरीर तथा इन्द्रिय निग्रह समूह के उगार शासन करने वाली तथा कर्मों का फल भोगने वाली आत्मा जीव है । अद्वैत के अनुसार परब्रह्म और आत्मा एक ही है । दोनों का संबंध अंती और अंता का है । इसी कारण एक के दुःख से दूसरे का दुःख होना चाहिए । लेकिन जीव के व दृष्ट मिथ्याभिमान जनित भ्रम के कारण है ।

तन्त्रों ने ब्रह्म और जीव की अद्वैतता स्वीकार की है । तन्त्र कवियत्रियाँ भी इस बराबर जगत में परमात्मा से पृथक् किसी वस्तु की सत्ता स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं । कुछ वस्तु में भी परब्रह्म की छाया का आभास मानती हैं । जो लोग अपनी स्थूल बुद्धि के कारण स्वयं को ब्रह्म से पृथक् मानते हैं और पंच तत्त्वों को ही

सब मानते हैं वे क्लेश भोगते हैं । यद्यपि इन्होंने छ जीव की सूत्र व्याख्या कहीं नहीं की है किन्तु परमात्मा या ब्रह्म का स्वरूप ही मानती हैं । जीव का मायाबद्ध रूप ही संसार के क्लेशों को भोगता है । यह उपावस्था में रहता है बाहे तो ज्ञान प्राप्त कर पुनः ब्रह्म मय हो सकता है :-

"भीतर का भीतर जुले, के बाहर कुल जाय ।

देह छेह हो जाएगी, जे हों जन्म गंवाय ॥ "-।

इन कवियत्रियों के अनुसार ब्रह्माण्ड और पिण्ड में ब्रह्म की ही सर्वगत, स्वयं धेतना परिव्याप्त है । आत्मा परमात्मा में कोई भेद नहीं है । यह जन्म - मरण में एक समान है । सांसारिकता में भ्रमित जीव को ब्रह्म दिखाई नहीं पड़ता यदि वात्साएँ नष्ट हो जाए तो ब्रह्म स्पी सागर में "लहर" की भाँति लहराने वाला जीव उठी सागर में लीन हो जाएगा । इन संत कवियत्रियों जीव और ब्रह्म में कोई तात्त्विक अन्तर स्वीकार नहीं किया वस्तुतः इनका जीव या ब्रह्म निष्कण औपनिषदिक ज्ञान पर आधारित है ।

माया

सन्त कवियत्रियों के अनुसार जीव और ब्रह्म में अंश भावना है । परमात्मा के कारण यह अलग अलग प्रतीत होते हैं । माया की प्रकृति त्रिगुणात्मिका है यही जगत की उत्पत्ति स्थिति और संहार का कारण है । धेतन जीव जब नाना विषम विकारों में आनन्द लेता हुआ अपने मूल को भूलकर शरीर को ही सब कुछ समझने

लगता है तभी उसके जीवन का आरम्भ है और यही माया है ।  
आचार्य शंकर ने इसी भ्रम रूप को माया की संज्ञा दी है ।

तन्त्र कवयित्रियों की दृष्टि में संसार के समस्त बंधन "माया" है । इसी कारण जीव इस सांसारिकता में पंश कर दुखों को भोगता है । यह माया जल - धूल सबमें विद्यमान है । जो शहद की मीठी एवं कंवल की लोभ वाली है । संसार में जो भी दूखमान है , सब माया है । यह ज्ञानी और ईश्वर भक्तों तथा अद्भुत कृपालुओं का कुछ नहीं कर पाती है । अज्ञानी लोगों को पल भर में नष्ट करती है ।

### जगत्

प्रारम्भ से ही मानव जगत् की उत्पत्ति और स्थिति के संबंध में जानने की इच्छा करता रहा है । तन्त्र कवयित्रियों की जगत् संबंधी धारणा ज्योतिषवाद से काफी प्रभावित है । यह समस्त सृष्टि ब्रह्म को भगवान की माया मानती है । पृथ्वी, जल, तेज, वायु ये चार तत्त्व ज्ञानी आणविक अवस्था में जगत् के मूल कारण हैं । यह जगत् उसी परम तत्त्व का उगरी रस है ।

### भुक्ति

अतीत काल से मानव के मन में जिज्ञासा रही है कि मृत्यु के बाद जीव का क्या होता है ? वह कहा जाता है ? क्या परमतत्त्व में मिलता है ? यदि मिलता है तो पुनर्जन्म क्यों होता है । साधक व्यक्तिगत साधना से मन को शूद्ध एवं पवित्र कर भक्ति के द्वारा कर्मण युक्त क्षेत्र में प्रवेश करता है । इस तन्मयता में वह समस्त बाह्य वस्तु

होकर ब्रह्म में लीन हो जाना मोक्ष या मुक्ति मानता है । तन्त्र कवियत्रियों ने मन की बल्लता तथा माया को मुक्ति का बाधक बताया है । इस कारण मन स्थिर होने पर ही ब्रह्म का स्पर्श संभव है । यह सब ज्ञान प्राप्त करने पर ही संभव है । ज्ञान के द्वारा ब्रह्म के साक्षात्कार के बाद सभी विद्वत्स्थिति स्वतः स्थिर हो जाती है ।

### 3-धार्मिक विचारधारा

मानवता के विकास काल से ही धर्म का विशेष महत्त्व रहा है । यह धर्म शब्द "धृ" धातु से बना है । जिसका तात्पर्य धारण करना है अर्थात् समस्त जाति को धारण कर तन्मार्ग पर लगाएँ । धर्म मानव जाति के एक विशेष प्रकार के अनुभवों की अभिव्यक्ति है । यह एक मार्ग है जो ईश्वर के सामीप्य की ओर ले जाता है तथा मानव जाति की आधरण सहिता निर्धारित करता है । यह विश्वास पर आधारित होता है तथा संसृति या प्राण तत्त्व होता है ।

सूक्तः धर्म के दो रूप हैं एक समाज को नियन्त्रित करता है तो दूसरा आध्यात्मिक मार्ग ज्ञ, तप, शील और ईश्वराधना का अवलम्बन होता है । धर्म ही सिखाता है कि काम दमन, संयम तथा त्याग एवं परहित कर सहज सरल मार्ग पर चलना चाहिए । तन्त्र कवियत्रियों का धर्म भी साधारण है इनका मुख्य लक्ष्य जीवन - मरण की आशा का स्वर्ग-नरक की भावना एवं पाप-पुण्य की भेद-भावना से ऊपर उठना है । वे किम्वदन्ता आवश्यक मानती हैं किन्तु सिद्धिगिड़ाना या रिरियाना प्रसन्न नहीं करती ।

### लोक धर्म और मर्यादा

आध्यात्मिक जीवन को सफल बनाने के लिए तन्त्र कवियत्रियाँ

अपनी अनुभूति, अभिव्यक्ति एवं आवरण को मसता वाचा कर्मणा, संतुलित बनाए रखना अपेक्षित मानती है। संत कवयित्रियों का आत्मिर्भाव काल भीषण उठा पटक का उल्लास रहा था। अंध विश्वास एवं धमत्कारों को बड़ावा मिल रहा था फलतः इन्होंने लोकधर्म के रूप में सहज जीवन एवं उचित मर्यादाओं का पालन एवं निर्धारण किया। मन और आत्मा की शुद्धता के बिना ईश्वर भक्ति अशभव है अतः इन्होंने आवरण शुद्धता पर बल दिया है। अपनी लौकिक धर्म साधना, सत्यावरण, किनम्रता एवं सेवा भावना पर आधारित है।

#### 4-स सामाजिक विचारधारा

मानव जीवन के मन में परार्थ और स्वार्थ दो वृत्तियाँ होती हैं। दोनों क्रमशः उसे देवता एवं परमात्मा की ओर ले जाती हैं। मानव जब समस्त संसार को अपना घर तथा ईश्वर को परमपिता मान लेता है। तभी उसे उसमें "विश्व बन्धुत्व" की भावना प्रसूत होती है। भारतीयों ने जब इस सत्य को पहचाना तभी से ईश्वर के प्रमुख मानकर विभिन्न मार्गों का निर्धारण कर विश्व कल्याण को प्रयुक्त की है। युगों पहले से समाज और धर्म एक दूसरे के पूरक रूप में चले आ रहे हैं। कालान्तर में दोनों की दूरियाँ बढ़ती गई और आज भारतीय समाज अपने मूल धर्म को भूलकर उसके बाह्य रूप को अपना कर विभिन्न अन्धविश्वासों और रुढ़ियों में पड़ कर विभिन्न वर्गों में बंट गया है। सन्त ऐसी सामाजिक व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। फलतः समाज सुधार की ओर पर्याप्त कदम उठाया और उनका संत समाज - "हरि का भजे तो हरि का होई" अनायास बन गया। इनको वैयक्तिक आवरणों पर जोर देकर करनी और कथनी में सामंजस्य रखने की सलाह दी।



### पारिवारिक आदर्श

सन्त कवियित्रियों के साहित्य में आदर्श पारिवारिक जीवन की कल्पना की गई है जहाँ धर्म की प्रधानता, साम्य एवं ऐक्य है। उन्हें धनादि की आकांक्षा नहीं है। अपने श्रम से उपार्जित धन की सूखी सूखी पर संतोष है। उन्होंने एकता का समद्वार्ति सिद्धान्त बतलाया है तथा सबको एक ही ईश्वर की सन्तान माना है।

### सामाजिक मर्यादा

समाज की व्यवस्था के लिए विभिन्न वर्गों का संगठन आवश्यक है। यह स्थायी एवं दृढ़ संगठन विभिन्न नैतिक नियमों का निर्धारण करता है जिन पर समाज चलता है। सन्त कवियित्रियाँ जात-पात के भेदभाव को भूलकर अपने अहं को त्याग देने एवं किम्वद्वाने की शिक्षा दी है। इसी कारण इनके साथ सर्वा = असर्वा, हिन्दू-मुस्लिम सब एक समान थे। प्रेम एवं संतोष ही बड़ा धन है। एक स्वस्थ समाज की आदर्श कल्पना ही सत्कर्म ही जीवन को सुखी बनाते हैं।

### नारी मर्यादा

सन्त कवियित्रियों के लिए इन्द्रिय निग्रह का जीवन कान्ध एवं साध्य था। किन्तु इन्होंने बाह्य जिव के कर्माय उपकरणों से पलायन नहीं किया बल्कि गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए आराध्य को पाने की चेष्टा की है। विषयासक्ति निन्दनीय कहा है। इन कवियित्रियों का उद्य उदय काल तब हुआ जब नारी माया का प्रतीक नानी जाती थी, किन्तु उस युग में पतिव्रता नारी का विशेष महत्त्व था। उसे आदर एवं भक्ति की पात्र माना गया है। वे कामिनी रूप बुरा समझती है। आदर्श नारी व्रतद है जो पति

एवं गुरु की सेवा करें। अनेक कष्ट सह कर भी पारिवारिक आदर्श को निभाए रहे। उनके समाज की नारी त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति थी।

### सहज जीवन कोमल भाव

निर्गुण भक्ति धारा की कवयित्रियों ने अपने चिंतारों एवं भावों की स्पष्ट छाप सारे देश, काल और समाज के लिए छोड़ी है। इनके साहित्य में ज्ञान, योग एवं प्रेम का सामंजस्य उपस्थित हुआ है। इनके साहित्य में किसी मत या सम्प्रदाय का विरोध नहीं है। वे तो सरलतापूर्वक सत् वा परमतत्त्व स्वी राम के दिग्दर्शन करना चाहती हैं। उनका ब्रह्म निरन्जन है। पर भक्तों के हेतु दूसरे रूप भी स्वीकार है। उनके चेतना एवं प्रेरणा लट्ठ मार या ललकार नहीं बल्कि नारियोचित सहजता, सरलता एवं कोमलता से परिपूर्ण है।

### सन्त कवयित्रियों का साधना पक्ष

सन्त साहित्य में संत कवयित्रियों की व्यक्तिगत साधना का प्रकाशन बड़ी सुन्दरता सरलता एवं स्वाभाविकता से हुआ है। यह व्यक्तिगत साधना वस्तुतः भक्ति प्रेम एवं रहस्यानुभूति की साधना है जो आत्मा की परमात्मा के प्रति निश्चल एवं अनिच्छित संबंध की प्रगाढ़ता की परिचायिका है। इन कवयित्रियों ने अपने पदों, साधियों और वाणियों में बार - बार भक्ति के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। वे मानव को भव सागर से पार उतारने में भक्ति -

साधना को ही सबसे बड़ा सम्बल मानती है। मनुष्य का चित्त ईश्वर के चरणों में ही शांति प्राप्त कर सकता है।

भक्ति की तल्लीनता अन्य आनन्दानुभूति की अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से व्यक्त होने वाली नहीं। यह केवल हृदय में लिखा और अनुभूत किया जा सकता है। यह भक्ति की प्रगाढ़ता दूध और पानी की तरह होती है। साधक की यह प्रगाढ़ता सिद्धावस्था होती है। उसके सार कर्म ईश्वर को अर्पित होते हैं। इन कवियत्रियों के साहित्य में कोई निरिचल दार्शनिक मत भले ही न हो किन्तु परम्परा से प्राप्त साधनात्मक तैत्ति अक्षय्य दिए हैं। उनके साधना पक्षा को निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं :-

### परम्परा से प्राप्त योग एवं भक्ति-साधना

किन्ती विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अविच्छिन्न भाव से की गई त्रिधा साधना कहलाती है। यह साधना चाहे तप की हो या ज्ञान की अथवा कर्म की हो या सदाचरण, चाहे प्रेम की हो या उच्च उद्देश्य प्राप्ति की। सबका लक्ष्य एक ही होता है। अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय साधना में परम पद प्राप्ति हेतु ज्ञान, भक्ति और योग - तीन मार्ग प्रचलित रहे हैं। जिनमें समय समय पर किन्ती एक को प्रधानता मिलती रही है। इन्हें प्रायः एक दूसरे के पूरक रूप में ही समझा गया है।

### योग और भक्ति

योग साधना का प्रचलन प्रथम ईसवी सन् की द्वितीय सहस्राब्दी के आरम्भ से ध्यान योग एवं तपश्चर्या के रूप में प्राप्त

है । उद्योग की साधना भक्ति योग के पार्व विरोध का निर्देश करती थी । योग का सर्वप्रथम चित्तवृत्तियों के निरोध से प्रारम्भ है । जो मन को बाह्य वस्तुओं से रोक कर अन्तर्मुखी बनाने का सहायक माध्यम है । योग के माध्यम से ही इन्द्रियाँ जीतकर ईश्वर प्राप्ति तक है । श्रीमद्भागवत में भी योग के द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध की बात कही गई है । महर्षि पतंजल ने स्वयं अपने योग सूत्र में चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा जो ईश्वर प्राप्ति में सहायक है । भक्ति मार्ग में योग एक उत्तम साधन है । भक्ति में श्रद्धा के लिए योग वृत्ता है । अतः ये एक द्वारे के सम्पूर्ण मानती है ।

### योग - साधना

सन्त कवियित्रियों नाथ पंथियों की उत्तराधिकारिणी है तथा उनकी योग साधना से प्रभावित है । अतः उन्हें उद्योग की विभिन्न प्रियाओं की दीक्षा इनके अंतर्गत गुरुओं से मिली है । इनके साहित्य में भक्ति एवं प्रेम की प्रधानता तो है ही किन्तु योग परक विशेषताएँ भी दृष्टिगत होती हैं । जिसमें वे कूडलिनी जागरण, कज्जपा जाप, षट् चक्र भेदन, अहद नाद एवं गगन गुणा के रस्ते वाले रास की वर्णा करती हैं । यथा :-

तीनों बंध लगाय करि अहद सुने टंकोर ।

सहजो तुम्ह समधि में नहीं नाँव नहिं भोर ॥

इस प्रकार की योगिक प्रियाएँ उनकी दृष्टि में ईश्वर प्राप्ति में सहायक हो सकती हैं । इनका साहित्य नाथ पंथियों

की नीरस साधना की अवतारणा न होकर प्रेम भक्ति तथा योग का सरस सामंजस्य है ।

### ज्ञान मार्ग

सामान्यतः ज्ञान मार्ग का तात्पर्य उपनिषद् मूलक ब्रह्मवाद या ज्ञेयवाद से माना जाता है । वैदिक युग की कर्मकाण्डीय शुष्कता से दूर कर आचार्य शंकर ने आठवीं शती में स्वतंत्र वेत्ता द्वारा ब्रह्म की जिज्ञासा और साक्षात्कार तथा आत्मज्ञान का समुचित नवनीत समाज को प्रदान किया । सन्त कवयित्रियाँ भी इस औपनिषदिक ज्ञान से प्रभावित हैं किन्तु इनकी भक्ति ज्ञान परक है । भक्ति और ज्ञान में विरोध नहीं बल्कि सामंजस्य है । ज्ञान के आगमन से ही माया जनित अन्धकार विनष्ट होता है । यह ज्ञान ग्रंथों से नहीं गुरु से, साध से तथा सत्संग से प्राप्त होता है । यह ज्ञान ही हृदय में ज्योति स्फुरित कर, माया को भेद कर परम तत्त्व के दर्शन करा सकता है ।

### भक्ति साधना

प्राचीन काल से ही भारतीय साधना क्षेत्र में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म [योग] तीनों ही परम श्रेय के साधन रूप में स्वीकृत हैं । भक्ति शब्द ईश्वर के प्रति प्रेम को दर्शाता है । यह वह वृत्ति है जिससे इन्द्रियों की स्वाभाविक वृत्ति निष्काम भाव से ईश्वर में लग जाए । ज्ञान और भक्ति में पर्याप्त ॐ अन्तर होते हुए भी मूलतः एक है । ज्ञान के अनुसार आत्मा और परमात्मा एक है, भक्ति इसी अनुभूति का माध्यम है । प्रभु के एकात्म की चरमावस्था है ।

आचार्यों ने भक्ति को गौणी और परा भक्ति में विभाजित किया है। गौणी भक्ति साधन भक्ति तथा पराभक्ति साध्य भक्ति कहलाती है। द्रविण प्रदेश में उपजी भक्ति महाराष्ट्र में नामदेव के साथ आयी और वहाँ से रामानन्द इसे उत्तर भारत में लाए इन्होंने वाह्य कर्मकाण्डों की ओक्षा आन्तरिक प्रेम साधना पर विशेष बल दिया। तन्त्र कवयित्रियों ने ही भक्ति साधना को बनाया। तन्त्र कवयित्रियों ने भाव भक्ति पर विशेष बल दिया, क्योंकि सूक्ष्म भाव भक्ति का आविर्भाव हृदय से होता है। भक्ति भाव का अनुसरण करने वाला प्रपत्ति का मार्ग अपनाता है। जहाँ मर्यादा, वर्ग का बंधन नहीं होता, ऊँच - नीच, स्त्री - पुरुष कोई भी अपना सकता है।

### भक्ति के साधन

ईश्वर के प्रति भक्ति भाव हेतु कई माध्यम हैं। संसार के समस्त कर्मों में नाम स्मरण का विशेष महत्त्व है। महापुरुषों का विचार है कि किसी शब्द की बार बार पुनरावृत्ति से एक बहुत बड़ी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। वैष्णव और सुफी साधक भी नाम स्मरण पर विशेष बल देते हैं। संसारी क्लेशों को नष्ट करने हेतु नाम स्मरण अत्यंत औषधि है। तन्त्र कवयित्रियाँ, इस नाम स्मरण को कंधन, मोती और पारस की तरह तुरा बताती हैं। पारस की भाँति लोह भी स्वर्ण करता है। उनका विचार है अनवरत नाम स्मरण में जिह्वा के बिना ही आन्तरिक सुरति लगाए रखकर कन्याण है :-

ऐसा स्मरण कीजिए, तब रहे लो लाय ।

बिन जिह्वा, ताले बिन, अन्तर सुरति लगाय ॥<sup>1</sup>

नाम स्मरण की यह साधना पूर्ण निष्काम भाव से केली है । अन्ततः जिससे सहज आनन्द की प्राप्ति होती है ।

### सत्संगति

सत्संगति भी भक्ति का एक तोपान है जो साधक के आध्यात्म पथ को प्रशस्त करता है । सन्त कवयित्रियाँ साधु की संगति परमेश्वर के समान प्राप्तिदायक मानती हैं । इसकी संगति पृथा नहीं होती बल्कि <sup>वन्दन</sup> अलख कृष्ण की भाँति सुगन्ध तो भिस्की ही है । इनके उपदेश वन्द्य प्रकारा जेते होते हैं ज्ञान के कपाट खल जाते हैं । देहाटन या तीर्थ यात्रा कृष्ण है । सत्संग की नाव के सहारे ही भक्ति की बली टेकी जा सकती है । जो भक्तागर पार भी कराएगी ।

सत्संग की नाव में मा दीजे नर नार ।

टेक बली दूढ़ भक्ति की, तखो उतरौ पार ॥<sup>1</sup>

सज्जन की संगत से दुष्ट भी भले बन जाते हैं । कोये की हंस की तरह मोती ही चमके हैं । यह सन्त महिलाएँ सत्संगति के आगे सब कुछ चूँच मानती हैं ।

### आत्म निवेदन

भक्ति के अनेक साधनों में आत्मनिवेदन या समर्पण का अपना अलग महत्त्व है । अने जाराध्य के समक्ष अपना सारा हृदय खोलकर अपने अज्ञ अज्ञात करण कंठ से सारा क्लृप्त बोया जा सकता

हे । भगवन् के महान गुणों के सम्म अनी वृच्छता स्वीकृत करता है, पक्षतः ईश्वर को दया जाना स्वाभाविक ही है । विनय के साथ ईश्वर के प्रति कृपा, श्रद्धा एवं विश्वास स्वतः प्रसूत होता है ।

### गुरु भक्ति

प्रायः समस्त संत एवं संत कवयिक्रियों ने अपने काव्य के प्रारम्भ में ही गुरु की महिमा का विस्तृत वर्णन किया है । गुरु का गौरव असीम है । वह अंत उपकार करने वाला है । वह ईश्वर से भी महान है । ईश्वर तो माया जाल में उलझा भी देता है किन्तु गुरु उनसे छुड़ाकर सन्मार्ग में लेकर मुक्ति मार्ग दिखा देता है । गुरु साक्षात् ब्रह्म स्वरूप है । शरणागत को वे भक्ति ज्ञान और योग की शिक्षा देते हैं । सहजोबाई और दयाबाई के गुरु तो अलौकिक ब्रह्म समान हैं जो लौकिक ब्रह्म के हृदय में समाकर जगत् कल्याण करते हैं । गुरु ही संसार से मोह पारा तोड़ता है । इनका गुरु सब तीर्थों का सार है तथा समस्त ब्रह्माण्ड में गुरु धरणा के समान कोई दूसरा पवित्र स्थान नहीं है ।<sup>1</sup> गुरु पर इन्हें असीम विश्वास है । गुरु निन्दक का मुँह देना भी पाप है । ऐसे व्यक्ति सद्गुरु पाप भोगते हैं । गुरु ही आत्मा को परमात्मा से मिला सकता है ।

### भक्ति की सिद्धि

भक्ति की कोई सिद्धि नहीं अपितु वह स्वतः सिद्धि है । किन्तु निष्काम साधना के रूप में ग्रहण करने पर यह आत्मा परमात्मा



के बीच की दूरी समाप्त कर आवागमन से छुटकारा दिलाती है ।

### युग सम्भूत मानसिक शृद्धि एवं प्रेम

आचार्य शंकर उस मानव को क्लिष्ट विजयी मानते हैं जिसने मन को जीत लिया है । यह मन एक घबल रह है जिसमें इन्द्री रूपी अशुद्धि छुते हैं । मानव के मोक्ष एवं बन्धन का कारण मन ही है :-

“ मन एव मृष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयोः । ”

### मन की वृत्ति

मन की दो वृत्तियाँ मिली और शृद्धि है । मलिन वृत्ति के कारण द्वैत प्रतीत क्लिष्टाभास एवं देहादिक की संज्ञा स्फूर्ति होती है । इसका निवारण ही शृद्धि वृत्ति है । सत्गुरु के ज्ञान सहयोग एवं सत्संग आदि से ही मानसिक शृद्धि प्राप्त होती है और तभी वह ईश्वर का साक्षात् करता है :-

तन जग में मन हरि के पाता, लोक भोग से सदा उदासा ।

मन ही सब कुछ है । यदि वह हमें डुबाता है तो वही तारता भी है । यह सब किसको दगा दे जाए कुछ नहीं कहा जा सकता । जो इस मन की प्रवृत्ति और घबलता एवं व्याकुलता को मोड़ कर ईश्वर चरण में लगाता है वही मन्थन है ।

### प्रेम

शृद्धि मानसिक शृद्धि साधक के लिए लाभदायक नहीं है । बल्कि उसमें प्रेम की रत्नवती धार और रामनाम की गूँज होनी

आवश्यक है। प्रेम के बिना मानव जीवन निस्तार है। प्रेम की ज्योति के सहारे ही हरि दर्शन प्राप्त होते हैं। यथा :-

"प्रेम झुंज प्रगटे जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होय।

"दया" दया करि देते हैं, श्री हरि दरसन सोय ॥"

प्रेम के कारण ही अमृत सागर प्राप्त होता है तथा काँच [बूँठ] को त्याग कर सखी ग्रहण करता है।

### सहज समाधि.

स्थूलता समाधि से तात्पर्य योगियों के द्वारा प्रणायाम के द्वारा साँस ब्रह्मरंध्र में दबाकर आनन्द की स्थिति को भोगना है। किन्तु सन्त कवयित्रियाँ इस प्रक्रिया पर विश्वास नहीं करती। वे तो अनुभूत्यात्मक अवस्था में निरन्तर अपने आप को डुबाए रखने को सहज समाधि मानती है। ऐसी अवस्था वह जो भी करती है वे सब सेवाएँ कहलाती है। जहाँ शायन-दंडवत्, बोलना - नाम स्मरण तथा खान-पान, पूजा होती है। सहजावस्था की स्थिति अति आनन्ददायी होती है। एक अनीची ज्योति फूट पड़ती है। मन की घंघनाता एव लुप्त हो जाती है। अमृतानन्द फूट पड़ता है :-

किन दाकिन उजियार अति, किन धन परत फुहार।

मगन भयो मनुवाँ तहाँ, दया निहार - निहार ॥ -

### सन्त कवयित्रियाँ और सूफी सम्प्रदाय

सूफी साधना वस्तुतः एक [प्रेम] की साधना है। "

'मारिफत' के भावावेग मय रूप का नाम ही प्रेम है । ~~विद्वानों~~ विद्वानों की रति रूप रागात्मिका वृत्ति ही प्रेम का रूप धारण करती है । वे समस्त जगत् प्रेम का परिणाम मानते हैं । सुफियों के अनुसार इस कृतमान जगत् में वही परम तत्त्व विद्यमान है । वे परमात्मा को प्रियतम और आत्मा को प्रेमी के रूप में मानते हैं । सुफियों के अनुसार जगत् में अगर ईश्वर न होता तो कुछ भी न होता । ईश्वर के नश्वरों में वर सुफी साधक परमात्मा के केवल व ऐश्वर्य के साथ ज्ञान प्राप्त करता है ।

सुफी साधना का यह प्रभाव संतों पर भी पड़ा है उन्होंने प्रेम साधना को ज्यों का त्यों अपना लिया । हिन्दी के सभी विद्वानों यह मानते हैं कि इन्होंने ज्ञान तत्त्व भारतीय वेदान्त से तथा प्रेम तत्त्व सुफी साधना से ग्रहण किया है जिस प्रकार सुफियों ने ईश्वर के आगे स्वयं को अर्पित कर दिया है । वे ही सन्त कवयित्रियों ने ईश्वर के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया है ।

सन्त कवयित्रियों की आत्मा को भी परमात्मा के प्रेम में वियोग की पीर सज्जी पड़ती है । प्रभु के इस प्रेम के आगे समस्त जगत् तिनके के समान लगता है । समाज से नाता टूट जाता है । दिवानगी आ जाती है ।

प्रिय के वियोग ने उत्पन्न पीड़ा में वियोगिनी की आत्मा कई विविधता की सी हो जाती है । पीड़ा जब आसन्न होती है तो साधक को कष्ट ही पड़ता है :-

"विरह व्यथा सुं हूं चिकल, दरसन कारन पीव ।"-।

प्रेम के सागर में डूबे मन को निकलना कठिन है वे कुछ कह कर भी नहीं कह पाती है :-

"प्रेम मग्न हो साध जन ति गति कहीं न जाय ।"

### सन्त कवियित्रियों की साधना पद्धति का स्वरूप

इनकी साधना को शिमा में बांधा कठिन है । अतः इनकी साधनाओं को सर्वांग साधना कहना ही अधिक उपयुक्त होगा । इनकी इस साधना तरीके में विभिन्न निर्धारणीयाँ समाहित है । जहाँ गुरु का अनुग्रह प्रथम है । बिना उसकी कृपा के तो सब जग अधियारा ही है । साधु की संगति भक्ति साधना में एक तानता बनाए रखने वाली औषधि है । अपने आराध्य को की तन्मयता में नाम स्मरण भक्ति भाव प्रदर्शित कर ही सर्वव्यापी ढूँढा जा सकता है । इस प्रकार कह सकते हैं कि सन्त कवियित्रियों का साहित्य और उनकी साधना मानव मात्र की समानता एवं क्लिब - बन्धुत्व की भावना के मूल सूत्र की भाँति अनुस्यूत है जिनकी चिन्तना में सत्य, सौन्दर्य और शिव परस्पर विभिन्न न होकर एक ही व्यापक परम सत्त्व के अनेक रूप है ।

### सन्त कवियित्रियों की वाणियों में कला पक्ष का स्वरूप

मानव के मन - मस्तिष्क में उद्बलित विचार और भाव जब तक दूसरे के नहीं बन जाते तब तक वह व्याकुल रहता है । इसीलिए

प्रत्येक मनुष्य जन्मना कवि माना जाता है। वे अपनी भावनाएँ रंग, रेखा, तुलिका या कलम और शब्द से व्यक्त करते हैं।

हिन्दु साहित्य में भारतीय साहित्य और भारतीय साहित्य में हिन्दी साहित्य की सन्त काव्य धारा का विशिष्ट महत्व है। उन्होंने जो अध्यात्म एवं भक्ति एवं ज्ञान की परस्पर भावभूमि तैयार की है वह आज भी साहित्य की विशिष्ट निधि है। सन्त कवियत्रियों की अभिव्यंजना शक्ति का अध्ययन निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत है :-

### बाह्य रूप

किसी वस्तु का औचित्यपूर्ण समन्वित सुन्दर संगठन और छवि ही उसका रूप है। रूप ही सुन्दर बाह्य आवरण है जिसमें हो कर आत्मा का आभास होता है। कवि अपनी स्वानुभूति का प्रवाह प्रकट करने के लिए भाषा, शब्द, छन्द एवं अक्षरादि अवयवों का सहारा लेता है। यह काव्य रूप छन्द अक्षरारण्य या सजावट मात्र नहीं अपितु भाव या वक्तव्य की स्पष्ट करने की एक निश्चित प्रणाली है। यहाँ सन्त कवियत्रियों द्वारा ग्रहीत काव्य रूपों पर क्रमिक विचार प्रस्तुत है :-

### छन्द

छन्द मोगत भावों को तार्थक वाणी में संगीतात्मकता के साथ प्रकट करने की एक प्रणाली है। महर्षि पाणिनी ने इसका अर्थ आह्लादन माना है। हिन्दी साहित्य में संस्कृत एवं प्राकृत से आए दोनों प्रकार के छन्द विधान हैं जिन्हें वर्ण और मात्राओं के क्रम में विभाजित किया जाता है।

## सन्त कवियत्रियों का छंद विधान

इन कवियत्रियों ने काव्य को कला न मान कर उपदेश का उपादान माना है। अतः बिना किसी प्रयत्न के जो काव्य रूप आ गए है वही है विद्वता प्रदर्शित करने हेतु छन्दों की भरमार नहीं है।

### साखी

साखी उपदेश प्रधान काव्य रूप है। नाथ और निर्गुण सम्प्रदाय के संतों ने नीति, व्यवहार, एकता, समता एवं ज्ञान की बात इन्हीं के माध्यम से कही है। अतः कवियत्रियों ने भी इसे अपनाया है। साखी एक तरह से दोहा है किन्तु साक्षी या गवाही पूर्ण उपदेश के कारण इसे साखी नाम मिला। दोहा छंद की परम्परा अति प्राचीन है किन्तु नाथों एवं संतों ने इसे साखी के रूप में अपनाया।

### पद {सबद}

इन कवियत्रियों के पद या "सबद" गेय है जो लोक गीत के रूप में अपनाए गए हैं। इनके अन्तर्गत स्वानुभूति के प्रभाव स्वरूप गंभीर उद्गार प्रकट किए गए हैं। यह "सबद" रचना कबीर आदि संतों से आगत है। वस्तुतः पदों की परम्परा अति प्राचीन है।

### सोलह तिथि

संतों की दृष्टि में "काल तत्त्व" भगवान् का दण्ड है। इसी कारण काल के नित्य जीवन में उतारने का प्रयत्न किया गया है। इन्होंने चन्द्रमा की सोलह तिथियों के अनुसार प्रथमा से अमावस्या एवं पूर्णिमा आदि का वर्णन किया है।

## वार

सप्ताह के सात दिनों को लेकर प्रत्येक वार के नाम पर इन संत कवयित्रियों ने कुछ पद लिखे हैं। सन्त कबीर ने भी वारों के साथ कुछ वाणियाँ रची हैं। सन्त सहजोबाई ने भी इस वार वर्ण के माध्यम से भक्ति और ज्ञान की बातें कहीं हैं।

## वसंत

वसंत को फागुन या धमाल भी कहा जाता है। इसका प्राचीनतम रूप प्राकृत एवं अपभ्रंश काल से विद्यमान है। हिन्दी साहित्य में वसंत रूप कबीर के काव्य रूपों में मिलता है। संत कवयित्रियों में सहजोबाई ने इनके अध्ययन से सांसारिक जीवों को ज्ञान, भक्ति एवं मुक्ति के उपदेश दिए हैं। इन कवयित्रियों के ये काव्य रूप जन-प्रचलित एवं सर्वजन प्रिय हैं।

## अलंकार विधान

संत साधक ब्रह्मानन्द में तन्मय रहते हैं। उन्होंने अपनी वाणियों की उद्भावना भवसागर के संतरण हेतु की है। इसी कारण अधिकतर संत साधक काव्य के उपकरणों एवं नियमों से अपरिचित थे। संत साहित्य में उन्हीं अलंकारों का प्रयोग है जिनकी योजना अज्ञात रूप में हो गई है। संत कवयित्रियों के साहित्य में भी अलंकारों का आगमन स्वाभाविक रूप से हुआ है। उनका नियोजन काव्य-वार्तु प्रदर्शन हेतु नहीं हुआ है। इनके काव्य में प्रायः निम्नांकित अलंकार प्रयुक्त हुए हैं :-

॥॥ अनुप्रास :- एक या एकाधिक व्यंजनों की आवृत्ति वाले सभी तरह के अनुप्रास प्रयुक्त हुए हैं :-

छेकानुप्रास -

॥क॥ साधु संग तीरथ बड़ो, तागें नीर विचार ।

॥ख॥ मैं बंदी हो परमतत्व की, जग जानत कि मोरी ।

वृत्त्यानुप्रास :-

॥क॥ सहजो संगति साधु की, काग हंस हो जाय ।

॥ख॥ तन मन धन तजि हरि भजे, जिनका मत्ता अगध ।

अन्त्यानुप्रास -

इस अलंकार का प्रयोग सर्वाधिक एवं समस्त काव्य में प्राप्त है :-

हरि हरि जप लेना अवसर बीत्यो जाय ।

जो दिन गए सो फिर नहिं आवें, कर विचार मन लाय ॥

॥2॥ पुनरुक्ति प्रकाश

पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार उक्ति में वमत्कार बढ़ाता है । पुनरुक्ति प्रकाश और वीप्सा में अत्यंत साम्य है, किन्तु इसमें भाव पर बल दिया जाता है जबकि उसमें मनोगत भावों की स्वतः प्रेरणा से शब्दावृत्ति दिखाई देती है । पुनरुक्ति प्रकाश का पर्याप्त प्रयोग है :-

साधु मिले पूरी भई, जनम जनम की आस ।

सहजो पायो भावनो संत संगत में वास ॥

॥3॥ वीप्सा

हर्ष , आश्चर्य , घृणा , आदर आदि मनोवैशेषों को प्रकट



करने के लिए जहाँ एक शब्द की ओर बार आवृत्ति होती है, वहाँ वीप्सा अकार होता है :-

हरी हरी हरि द्रौपदी, बाढो धीर अपार ।  
लज्जा राखी तथा में, दूतात्न गयो द्वार ॥

#### ॥4॥ यमक

एक ही शब्दों की भिन्न - 2 अर्थों में आवृत्ति से यमक अकार की गृहीत होती है । इन कवयित्रियों ने प्रायः इसका प्रयोग किया है :-

विरह विधा सु है विषम, दरसन कारन पीव ।  
दया दया की लहर कर, क्यों तलपत्रवो जीव ॥

#### ॥5॥ तिष्ठकलोष्णी

यह भी अन्तर्लपिका का एक रूप है । पंक्ति का अंतिम शब्द नई पंक्ति के प्रारम्भ का शब्द होता है । बावरी गाहिबा का एक पद प्रस्तुत है :-

बावरी बावरी का लक्ष्य, मन हवे के पंखा मेरे नित भाँवर  
भाँवरो जानहिं संत सुजान जिन्हें हरि रूप छिपे दरतावरी ।  
सावरी सुरत मोहनी मूरत, देखि कति रूप लखावरी ।  
आवरी सोहं ते हारी प्रभु गति रावरी देखि ईर मति बावरी

#### ॥6॥ उपमा

साम्य मूलक अकारों के तुलनापरक भेदों में उपमा सर्वश्रेष्ठ

है । जहाँ दो पदार्थों को किसी विशेष ~~अर्थ~~ धर्म एवं किसी लभता वा एक शब्द से सादृश्य बताया जाय । वहाँ उपमा होता है । सभी ऊँगे सङ्क्षिप्त पूर्णापमा तथा किसी ऊँ से हीन को उपलोपमा कहते हैं । तत्त कवियत्रियों के काव्य में दोनों रूप प्राप्त है :-

सखजो गुरु रंगरेज सम, सखही को रंग देत ।  
वाहे जेला वस्न हो, भेजा उजला स्वेत ॥

### ॥७॥ रूपक

साध्य मूलक अङ्कारों के अनेक परक भेदों में रूपक सर्वोत्तम है । उपमेय का उपमान पर सीधा आरोपण किया जाता है । तत्त कवियत्रियों ने धर्म वर्णन की गूढ़ बातों का प्रयोग पर इसी अङ्कार को प्राथमिकता दी है :-

साधु कृष वाणी कली, घरवा फूले फूल ।  
सखजो अति वाग में नाना फल रहे झूल ॥

### ॥८॥ दृष्टान्त

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्य में साधारण धर्म उपमा वाक्य शब्द से बिना बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से व्यक्त दिए गए हों वहाँ दृष्टान्त अङ्कार होता है । तत्त कवियत्रियों के काव्य में इसके सुन्दर प्रयोग प्राप्त है :-

जगत तरेया भोर की, सखजो ठहरत नाहि ।  
जेसे योती ओ न व, पानी कूली माहि ॥

## 1.1 रत्नेय -

जहाँ रिलेट शब्दों में अनेक ~~वर्णों~~ का विधान किया जाय ।  
वहाँ रत्नेय होता है इसके दो भेद अंग और संज्ञा रत्नेय हैं । जहाँ  
वर्ण के लिए पद भंग <sup>न</sup> किया जाय वहाँ अंग और जहाँ पद भंग दिए जाए  
वहाँ संज्ञा होता है । सन्त कवियित्रियों के काव्य में दोनों रूप प्राप्त  
हैं :-

बाले दिए बाँझा, बड़ा दिए अधियार ।

सहजो तुम हल्का तिरै, दुबे पत्थर भार ॥

### प्रतीक योजना

=====

संत कवि अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए साहित्यिक  
भाषा का प्रयोग करते हैं । यह किंतु ही प्रतीकों के जो रूपों के  
सहारे अपनी अनुभूति को सत्य रूप से परिचित कराते हैं । प्रतीक सत्य  
के रूप में वास्तविक सत्य या सत्य नहीं होते बल्कि उनके पीछे छुपे  
संकेतार्थ का भाव कराता है ।

### प्रतीकों के कार्य

मूलतः भाषा स्वयं प्रतीकात्मक संयोजना है । भाषा एवं  
साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक शब्दों का विशेष तात्पर्य एवं महत्त्व होता  
है । प्रतीक मानव अनुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए नियोजित किए  
जाते हैं । मानव जिन्हें व्यक्त नहीं कर पाता उन्हें प्रतीक ध्वनीभूत  
करके व्यक्त कर देते हैं । इन प्रतीकों को दो भागों में विभाजित  
किया गया है जिन्हें क्रमशः अद्वितीय और संबन्धित नाम दिया गया है ।

हिन्दी में प्रतीक शब्द अंग्रेजी लिम्बल के पर्याय रूप में आया है। वस्तुतः इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में प्राचीन काल से ही प्राप्त है। जैसे आधुनिक प्रतीक या प्रतीकवाद का जन्म परिवर्तन की देन है।

### सन्त कवयित्रियों और उनके प्रतीक

संत कवयित्रियों द्वारा प्रयोग किए गए प्रतीक विभिन्न स्रोतों से आए हैं। जो किशोरों, नाथों, एवं पूर्ववर्ती संतों से आगत कहे जा सकते हैं। संतों ने अपने प्रतीकों का प्रयोग सर्वाधिक उलट-वास्तवों में किए है। संत कवयित्रियों ने अपनी आत्माओं एवं पदों में इनका प्रयोग किया है। निम्न में प्रस्तुत है :-

#### अमृतानन्द

अमीधार - पीपल बैठा अमीधार ॥ तख्त प्रकाश पृ० ०४ ॥ १६ ॥

फुहार - जिन धन परत फुहार ॥ दयादाई की आनी, पृ० ॥ १ ॥

#### अज्ञान

नींद - मोह नींद में सब नर पागे ॥ त०प्र० पृ० २५ ॥

रेन - रेन अविद्या मिट गई। ॥ द०बा० पृ० १२ ॥

#### जीवात्मा =

काग - काग पलट भई रहा ही ॥ त०प्र० पृ० २३ ॥

मनिका - ज्यों मनिका में डोर ॥ द०बा० पृ० १२ ॥

## काल

दंड - यम दंड न टूटे ॥ स०प्र० पृ० 21॥

नदी - काल नदी के माहि ॥ द०बा० 8 ॥

## गुरु

पारस, दीपक- गुरु पारस दीपक गुरु ॥ स०प्र० 5 ॥

वर्कई - जैसे वर्कई ठोर ॥ स०प्र० 31॥

खेवनहार - सतगुरु खेवनहार ॥ द०बा० 4 ॥

## शिष्य

लोहा - लोहे वूं पारस करे ॥ स०प्र० 5 ॥

मैला घट - शिष्य मैला घट चित्त ॥ स०प्र० 033॥

वस्तन - बाहे जैसा वस्तन हो ॥ स०प्र० 34॥

काग - पलटे करे काग वूं हंसा ॥ द०बा० 2 ॥

## मूर्ख

कूँकर - कूँकर ज्यों भूँसत फिरे ॥ स०प्र० 80॥

## स्वाँस

दीपक - स्वाँस दीपक के बुझे ॥ स०प्र० 47॥

## परमात्मा -

सागर - सागर लहर समाय ॥ स०प्र० 53॥

चन्द्र - जैसे चन्द्र चकोर ॥ द०बा० 18॥

## ज्ञान

साङ्ग - दे दे साङ्ग ज्ञान का ॥ स०प्र० 32॥

गदा - गोविंद रूपी गदा गहि ॥ द०बा० 5॥

## माया

मृग, - मोह - मिरग काया बेठा ॥ स० प्र० ८१ ॥

रिपु - मारत रिपु को जाय ॥ द० बा० ६ ॥

## शारीर

छट - करि हिसाब छटि माहिं ॥ स० प्र० ४८ ॥

भ्रम रूप - तन रूपी भ्रम रूप ॥ द० बा० १२ ॥

इन सांकेतिक प्रतीकों का चयन संत कवयित्रियों ने विभिन्न क्षेत्रों से किया है जिन्हें अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति देने का माध्यम बनाया है। इनके अलावा अन्य बहुत से प्रतीक दिए गए हैं।

## बिम्ब विधान

भावुक अपनी हृदयानुभूति दूसरों तक पहुंचाने के लिए बिम्ब निर्मित करता है। बिम्ब शब्द अंग्रेजी "इमेज" का पर्याय वाची है। भारतीय काव्य शिल्प में बिम्ब पारचात्य देन है। पूर्णतः बिम्ब के समतुल्य अन्य शिल्प नहीं हैं। यह बिम्ब पूर्ण और अपूर्ण दो वृत्तियों वाले होते हैं। इनका प्रमुख लक्ष्य भावों को सविदनीय बनाना होता है। यह कल्पना की मूल शक्ति है। सम्पूर्ण बिम्बों को विद्वानों ने अलग-2 भेद बताए हैं। संतों के काव्य में वे तभी भेद लगभग प्राप्त हो जाते हैं। इन संत कवयित्रियों के बिम्ब विधान को प्रमुखतः निम्न शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं :-

## ॥१॥ उपात्त वस्तु के आधार पर

संत कवियत्रियों ने अपना संबंध समाज एवं प्रकृति से समान रखा है। इसी कारण उन्होंने प्रकृति के छोटी-2 चीजों के माध्यम से सजीव बिम्ब प्रस्तुत किए हैं :-

जैसे माछी घीव डूब कर निकसे नाहीं ।  
ऐसे यह नर डूब रहा कुन्बे के माछी ॥<sup>-1</sup>

कीट, ~~पतंग~~ पतंग, भ्रमर, दीपक आदि ये अतिरिक्त पशुओं का अवलम्ब लेकर बड़े ही सुन्दर बिम्ब निर्मित किए हैं :-

मोह मिरग काया बसे, कैसे उपजे छेत ।  
जो बौचे सोई घरे, लगे न हरि सो छेत ॥<sup>-2</sup>

वातक चकोर, मोर, घिरौटा, काग, हंस आदि पक्षियों से भी बिम्ब निर्मित कर अपनी अनुभूति को आकार दिया है।

इन संत कवियत्रियों समाज और परिवार में प्रतिदिन प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ जैसे - तेल, दिया, बाती, साबुन, मेल या नट की कला के माध्यम से सुन्दर बिम्ब उपस्थित किए हैं :-

सहजो गुरु ऐसे मिले जैसे धोबी होय ।  
दे दे साबुन ज्ञान का, कलिमल डारे धोय ॥<sup>-3</sup>

---

1- सहज प्रकाश , पृ० 98

2- वही, पृ० 81

3- वही, पृ० 32

## ॥२॥ भावों के आधार पर बिम्ब

सन्त कवयित्रियों की बिम्ब योजना को भावों के आधार पर भी विश्लेषित किया जा सकता है। अलौकिक और लौकिक स्तर पर, प्रेम - भावना, भक्ति, ज्ञान और ईश्वर के प्रति विरह आदि को सुन्दर भावों के माध्यम से प्रकट किया है। ईश्वर की अलौकिक विरह वेदना को इन लौकिक बिम्ब से प्रस्तुत किया है :-

बोरी हूँ चितवत फिर, हर आवे केहि ओर ।  
छिन उठूँ, छिन गिर परें, राम दुखी मन मोर ॥<sup>1</sup>

## ॥३॥ अभिव्यक्ति के आधार पर बिम्ब

सन्त कवयित्रियों के साहित्य में अभिव्यक्ति की प्रधानता के आधार पर भी बिम्ब प्राप्त है। इन्होंने अनेक बिम्ब अभिधा द्वारा अभिव्यक्त किए हैं :-

“स्नान ज्यों पेट भर के, जनम दियो गैवाय ॥”<sup>2</sup>

बिम्बों की अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द शक्ति तो है ही किन्तु अभिव्यक्ति के द्वारा बिम्ब प्रस्तुत करने में अजर भी विशेष महत्व रखते हैं। दीया, तेल, बाती आदि के उपमान प्रस्तुत कर अनेक बिम्ब प्रस्तुत किए हैं :-

बार पहर वा तेल भर, राते लीवा बात ।  
तेल निखड़ जाती लुझी, तक्यो पूरा काल ॥<sup>3</sup>

---

1- दयादास की बानी, पृ० 7

2- सहज प्रकाश, पृ० 123

3- वही, पृ० 71



इसी प्रकार भ्रमर, कीट, क्ली, पुष्प, बाग, तथा पशु पक्षी आदि अनेक उपमानों के माध्यम से इन संत कवियंत्रियों की वाणियों में सफल बिम्बों की योजना हुई है।

### सन्त कवियंत्रियों की वाणियों की भाषा =====

भाषा भावों और चिंतारों के विनिमय तथा नूतनातिनूतन चिंतारों के दृष्टि की मुख्य साधन है। भाषा के शक्ति चित्र [लिपि] उसे अमर स्वरूप प्रदान कर सम्प्रेषणीय भी बनाते हैं और इस प्रकार कह सकते हैं कि कवि की समस्त विद्या भाषा पर ही आधारित है। समस्त कलाओं की मूल भाषा है।

भाषा की आकांक्षा, योग्यता और शक्ति शब्दों पर आधारित है। शब्द एक सार्थक ध्वनि समूह तथा भाषा का सार्थक लघु रूप है। यह शब्द भाव प्रकाशन के मूल माध्यम है।

### शब्द योजना -

शब्दों का विवेक ऐतिहासिक एवं रूप रचना की दृष्टि से किया गया है तथा संत कवियंत्रियों की वाणियों में उन प्रचलित रूपों को छोजने का प्रयास भी किया गया है। संत कवियंत्रियों के साहित्य में तत्सम अर्द्ध तत्सम, तद्भव तथा देशज आदि शब्द बहुलता से प्राप्त हैं। इनमें अर्द्ध तत्सम एवं तद्भव शब्दों की सर्वाधिक प्रधानता है।

इनका भाषा पर सफल अधिकार है। एक सफल कवि की भाँति तत्सम तद्भव और देशज शब्दों को भाव व्यंजक बनाकर प्रस्तुत

किया है। उन्होंने देहा, काल, और पात्र के आधार पर शब्दों का प्रयोग कर अपने भावों को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस साधना परक साहित्य में प्रत्येक शब्द का विशिष्ट महत्व है।

### विदेशी शब्द

इन संत कवियत्रियों ने अपनी वाणियों को सरल रूप में जन - जन के हेतु प्रस्तुत करने के कारण अनेक विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें से अरबी - फ़ारसी के ऐसे शब्दों की प्रधानता है जो उस समय समाज के अभिन्न अंग बन गए थे जैसे - साहब, बक़ूल, मेहर, मौज, दरबार, अरज, बंदगी, गरीब निवाज, दीन आदि।

इनका विचार यह कभी नहीं रहा कि संस्कृत भाषा के प्रयोग से धर्म का प्रधान स्वरूप रहेगा। इसी कारण सर्व प्रचलित शब्द प्रयुक्त किए। उनमें चाहे विभिन्न भाषाओं के शब्दों को ही क्यों न ग्रहण करना पड़े। यही कारण है कि यह सन्त कवियत्रियाँ हजारों लोगों के दिलों में अपना प्रभाव जमाए थी।

### लोक प्रचलित जनभाषा

जन जीवन से दूर रहने वाली भाषा संत कवियत्रियों को पसंद न थी। काव्य की अभिव्यक्ति के लिए वे संस्कृत भाषा से अधिक लोक भाषा - दैनिक बोलचाल की भाषा को अधिक प्रसन्न करती थी। उस युग के सभी संतों ने संस्कृत को कूप जल कह कर लोकभाषा को अपनाया जो उचित भी था। साधारण जनता की धेतना के हेतु उनकी ही भाषा होना अनिवार्य थी जो सरिता के जल सम सबके लिए स्वच्छ एवं उपयोगी थी।

सन्त कवियित्रियों ने जनभाषा के महत्त्व को पूर्णतः परख लिया था । उनके विचार से उसमें मिठास ही नहीं अपितु कष्ट प्रवाह था, नृत्ता और नवजीवन था । व्याकरणशीला से बाधित संस्कृत आदि में वे अपने वृहद् अनुभवों की अभिव्यक्ति भला कैसे कर पाते ? फलतः उन्होंने बोलचाल के शब्दों वाली जनभाषा को ही अपने उपदेशों का माध्यम बनाया । यह भाषा सरल, सरल तथा कृत्रिमता से रहित जनता के हृदय को स्पर्श करने वाली अदम्य शक्ति और प्रभाव रखने वाली थी । संत कवियित्रियाँ भी वृंकि संतों की भाँति प्रम्प्रा शक्ति थी कथा उपदेशा देती थी । फलतः इनकी भाषा में भी मध्य देशीय रूप के साथ राजस्थानी, मराठी, या पंजाबी के शब्दों का प्रयोग एवं प्रभाव परिलक्षित होता है ।

### भाषा में सहज कोमलता

सन्त कवियित्रियों की विचारधारा प्राकृतिक प्रीतिस्वनी की भाँति प्रभावित होकर जन जन की जीवनदायिनी है । इसलिए उन्होंने अपनी वाणिज्यों के लिए उन्हीं माध्यमों को अपनाया है जिनमें अपनी शिरारु अर्थात् खोली और युवावस्था को प्राप्त किया । इसी कारण टूटे फूटे शब्दों के बावजूद सहजता से ही कोमलता पूर्वक अपना उद्देश्य प्राप्त करने में सफल रही ।

सन्त कवियित्रियों की भाषा उस काल की व्यवहारिक भाषा है जिसमें तत्सम शब्दों को प्राथमिकता देकर शब्द या संस्कृत मय नहीं बनाया बल्कि अनेक बोलियों के सरल शब्दों के द्वारा अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान की है । यह स्वीकार्य तो नहीं होगा कि वे सभी की भाषा - शैली एक ही है किन्तु इतना निर्विवाद तथ्य है

कि हिन्दी प्रदेश के भाषायी रूप को ही महत्त्व प्रदान किया गया है । हाँ उनके जन्म प्रदेश को प्रधानता अक्षय प्राप्त हुई है ।

इस प्रकार स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि सन्त कवयित्रियों की भाषा में विभिन्न भाषाओं - उपभाषाओं के शब्दों से युक्त होते हुए भी मध्यदेशी भाषा पर आधारित है । उसकी ही प्रकृति एवं शब्दावली की प्रधानता है । उसकी बोली के शब्दों, व्याकरणिक रूपों एवं व्यंजनात्मक शब्दों का पर्याप्त प्रभाव है ।

उपसंहार  
=====

निःसंदेह सन्त कवयित्रियों की वाणिष्यों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना एक दुस्तर कार्य है, क्योंकि कई शताब्दियों की साहित्यिक एवं लौकिक परम्परा इसमें निहित है । इनके अध्ययन में कई नवीन तथ्य दृष्टिगत हुए तथा सांसारिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत हुए ।

सन्त कवयित्रियों की काव्य रचना में युग का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है । शताब्दियों से प्रचलित शाब्द एवं साधना सिद्धान्त दृष्टिगत होते हैं । इन्होंने उस समय के प्रचलित सभी धार्मिक, दार्शनिक विचारधाराओं एवं सम्प्रदायों, साधनाओं के अनुभव का प्रयोग किया है तथा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के साथ पूर्णपूर्व परम्पराओं के साथ बौद्ध, नाथ, सिद्ध, सुफी मत, भक्ति आन्दोलन आदि से प्रभावित हुई है ।

इन सन्त कवयित्रियों ने पूर्ववर्ती सन्तों से लेकर समकालीन सन्तों के काव्य रूपों को अनायास तथा भाषा में भी उन प्रचलित शब्दावली को प्रधानता प्रदान की। तत्कालीन के दूरद - शब्द मार्ग को त्याग कर सरल सान्नाय्य जनभाषा का पथ अपनाया। हिन्दी साहित्य में इन कवयित्रियों का विशिष्ट योगदान एवं अभिन्न महत्त्व है। इनके अध्ययन के साथ एक विशिष्ट सम्यक् भी अध्ययन हेतु सिद्ध हो सकता है। यह अध्ययन मध्यगीन साहित्य के अध्ययन में सहायक सिद्ध हो सकता है।